नई शिक्षा नीति के अनुसार

2024

VVP (Regd.)

TM

विश्वविद्यालय प्रकाशन (रजि.)
ग्वालियर
द्वारा प्रकाशित

20 प्रश्न

(परीक्षोपयोगी महत्वपूर्ण मॉडल प्रश्नोत्तर)

हिन्दी साहित्य

VVP (Regd.)

काव्यांग विवेचन एवं जनपदीय भाषा-साहित्य

(समूह 'अ') (प्रथम प्रश्न-पत्र)

बी. ए. तृतीय वर्ष

नवीन पाठ्यक्रम

काव्यांग विवेचन एवं जनपदीय भाषा-साहित्य (बुन्देली)

इकाई–1. काव्यशास्त्रीय अवधारणाएँ :

- काव्य लक्षण
- काव्य प्रयोजन
- काव्य हेतु

इकाई–2. काव्य के प्रमुख अंग :

- रस विवेचन
- अलंकार (प्रमुख अलंकार–उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, यमक, श्लेष, अनुप्रास)
- शब्द शक्ति
- काव्य गुण (प्रसाद, माधुर्य, ओज)
- छन्द – दोहा, सोरठा, चौपाई, कवित्त, सवैया

इकाई–3.
- जनपदीय–भाषा : (बुन्देली)
- जनपदीय भाषा का भौगोलिक क्षेत्र विस्तार
- जनपदीय भाषा (बुन्देली) की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- जनपदीय भाषा का इतिहास

जनपदीय भाषा–साहित्य का इतिहास

इकाई–4. जनपदीय भाषा के प्रतिनिधि रचनाकार एवं रचनाएँ :

(अ) बुन्देली भाषा और इतिहास : प्रमुख कवि – (व्याख्या एवं समीक्षा)

(1) जगनिक – आल्ह खण्ड : अंश सुमिरन करके नारायण को .....

(2) ईसुरी–
(1) वंदना–सुमिरन करों शारदा माता,
(3) भक्तिपख फागें – हमखो कोउ रजउ की सानी, दूजी नाँइ दिखानी।
(4) प्रकृतिपरख फागें – अब रित आई बसंत बहारन
(5) लोक जीवन की चौकड़ियाँ – हंसा उड़ चल देख बिरानें सरवर जात सुखानें।

(3) संतोष सिंह बुन्देला–
(1) ऐसौ जो बुन्देलखण्ड है, सौ नौनें से नौंनौ।
(2) मिठौआ है ई कुआँ कौ नीर।
(3) लगा रओ कुकरा कबसें टेर
(4) हमारे रमटेरा की तान
(5) सरग तरइयाँ कीनें गिन लई

(4) माधव शुक्ल मनोज–
(1) बड़ी रसीली काँ गई रातें
(2) नीले बसंती आ गये दिन
(3) फागुन आ गऔ
(4) कब से देखूँ बाट पिया की
(5) अँगना के फूल खिला जइयो ....

इकाई–5. जनजातीय भाषा साहित्य :

(1) जनजातीय भाषा साहित्य संग्रह (लिखित वीडियो)
(2) किसी भी जनजातीय भाषा–साहित्य का अनुवाद
(3) जनजातीय भाषा साहित्य का भाषिक सौन्दर्य
(4) जनजातीय भाषा साहित्य अन्तर्गत संस्कृति का अध्ययन
(5) जनजातीय भाषा साहित्य और संगीत।

अनुशंसित मूल्यांकन विधियाँ		
अनुशंसित सतत् मूल्यांकन विधियाँ (अधिकतम अंक : 100) सतत् व्यापक मूल्यांकन (CCE) अंक : 30 विश्वविद्यालयीन परीक्षा (UE) अंक : 70		
आंतरिक मूल्यांकनः सतत् व्यापक मूल्यांकन (CCE)	क्लास टेस्ट असाइनमेंट/प्रस्तुतिकरण (प्रजेंटेशन)	कुल अंकः 30
आंकलनः विश्वविद्यालयीन परीक्षा समयः 03.00 घंटे	अनुभाग (अ): अति लघुउत्तरीय प्रश्न अनुभाग (ब): चार लघु उत्तरीय प्रश्न अनुभाग (स): दो दीर्घ उत्तरीय प्रश्न	कुल अंक 70

❑ **कृपया ध्यान दें :** नई शिक्षा नीति स्नातक तृतीय वर्ष में लागू की गई है। परीक्षा के नये पैटर्न में वस्तुनिष्ठ प्रश्न, लघुउत्तरीय प्रश्न तथा दीर्घउत्तरीय प्रश्न पूछे जायेंगे। कुछ लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर इस पुस्तक में दिये गये हैं। दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर में ही लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर निहित हैं। इस हेतु आप लघुउत्तरीय प्रश्न में जितना पूछा जावे, दीर्घउत्तरीय प्रश्न के उत्तर का उतना ही भाग लिखें।

कृपया ध्यान दें

विश्वविद्यालय प्रकाशन, ग्वालियर द्वारा प्रकाशित **बी.ए., बी.कॉम. तथा बी.एस-सी.** की '**20 प्रश्न**' पुस्तकें खरीदते समय **प्रत्येक पेज पर 2024 छपा देखकर सही तथा असली पुस्तक** ही खरीदें। बी.कॉम. तथा बी.एस-सी. अंग्रेजी माध्यम में भी प्रकाशित हैं।

हिन्दी साहित्य

(प्रथम प्रश्न-पत्र)

इकाई-1

लघु एवं दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न– 1. 'काव्य के लक्षण' लिखकर काव्य के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।

अथवा

'काव्य' किसे कहते हैं? परिभाषा लिखकर उसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।

अथवा

काव्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुये काव्य के लक्षण लिखिये।

अथवा

काव्य के स्वरूप एवं लक्षणों पर विचार कीजिये।

उत्तर– काव्य की परिभाषायें– संस्कृत साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य माना जाता है। संस्कृत के काव्य-शास्त्रकारों में भामह, वामन, मम्मट, आचार्य विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ आदि प्रमुख हैं। इन सभी ने काव्य के स्वरूप को अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयास किया है। इनके द्वारा निम्नानुसार काव्य की परिभाषायें दी गयी हैं-

(1) **आचार्य भामह** के अनुसार- ''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।''

अर्थात् शब्द और अर्थ से युक्त रचना को काव्य कहते हैं।

(2) **आचार्य मम्मट** ने ऐसे शब्दार्थ को काव्य माना है, जो दोष-रहित हो और गुण सहित हो। अलंकारों का प्रयोग चाहे हो या न हो। इस लक्षण की व्याख्या के अनुसार गुण काव्य की शोभा को उत्पन्न करने वाले होते हैं जबकि अलंकार इस शोभा की अतिशयता को बढ़ाने वाले होते हैं। इसीलिये मम्मट ने काव्य में गुणों का होना अनिवार्य माना है और अलंकारों को वैकल्पिक रूप में स्वीकार किया है। आचार्य हेमचन्द, विद्यानाथ, वाग्भट आदि आचार्यों ने इन्हीं का अनुकरण करके अपने-अपने काव्य-लक्षण प्रस्तुत किये हैं।

(3) **आचार्य विश्वनाथ** के अनुसार- रसवादी आचार्य **विश्वनाथ** ने आचार्य **मम्मट** द्वारा प्रस्तुत काव्य-लक्षण की सर्वांगीण आलोचना करते हुये यह लक्षण दिया है- ''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।''

अर्थात् रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं। इस लक्षण में 'रस' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है। भामह, दण्डी, उद्भट और रुद्रट आदि अलंकारवादी आचार्यों की दृष्टि में भी 'रस' ही काव्य का फल है। यद्यपि इन आचार्यों ने एकमात्र 'रस' को ही स्वीकार करके काव्य के सभी तत्वों को यथार्थ नहीं माना है। फिर भी इस बात में बिल्कुल सन्देह नहीं है कि आचार्य विश्वनाथ का यह काव्य-लक्षण एक महत्वपूर्ण तथ्य की स्वीकृति है।

(4) **पण्डितराज जगन्नाथ** के अनुसार- काव्य का लक्षण निम्नानुसार है-

''रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।''

अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं। 'रमणीयार्थ' से तात्पर्य है कि जिसके ज्ञान से अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो, वह अर्थ रमणीय कहलाता है। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है- ''जिस शब्द अथवा शब्दों के अर्थ की भावना करने से किसी अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो, उनको काव्य कहते हैं।'' वस्तुतः पण्डितराज का यह लक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अंग्रेजी साहित्यकारों ने भी काव्य के स्वरूप को अपने दृष्टिकोण से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इनमें डॉ. जॉनसन, मैकाले, बड्सवर्थ, मैथ्यू आर्नल्ड और टी.एस. इलियट के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रमुख परिभाषायें निम्नानुसार दृष्टव्य हैं-

डॉ. जॉनसन के अनुसार- ''कविता सत्य और आनन्द के मिश्रण की एक ऐसी कला का नाम है जिसमें बुद्धि की सहायता के लिये कल्पना का प्रयोग किया जाता है।''

आई.ए. रिचर्ड्स के अनुसार- ''अधिकाधिक आंतरिक भूख को तृप्त कर पाना और इस प्रकार तृप्त करना कि उनमें से कम से कम असंतुष्ट रहें, काव्य है।''

हिन्दी आचार्यों के काव्य लक्षण– हिन्दी में भी काव्य-शास्त्र के आचार्यों की एक विशाल परम्परा पायी जाती है। रीति काल में आचार्य चिंतामणि का काव्य-लक्षण सर्वप्रथम प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है-

''सगुनालंकारन सहित, दोष रहित जो होइ।
शब्द-अर्थ ताको कवित, कहत बिबुध सब कोइ।।''

आचार्य सोमनाथ का काव्य-लक्षण भी मम्मट के काव्य-लक्षण से प्रभावित है, किन्तु उन्होंने इसमें 'छन्द' को और जोड़ दिया है-

'' सगुन पदारथ दोष बिनु, पिंगल मत अविरुद्ध।
भूषन-जुत कवि-कर्म जो, सो कवित्त कहि सुद्ध॥''

हिन्दी में आचार्य भिखारीदास ने अपने काव्य-लक्षण में अलंकार, रस, ध्वनि और गुणों का समावेश करते हुये लिखा है-

''जाने पदारथ भूषनमूल, रसांग परांगन्ह मैं मति झाकी।
सो धुनि अर्थन्ह वाक्यन्ह लै गुन शब्द अलंकृत सोंरति पाकी॥''

अर्थात् काव्य वह शब्दार्थ है, जो अलंकार, रस, ध्वनि और गुणों (माधुर्य, ओज, प्रसाद) से युक्त हो। आधुनिक काल के कतिपय आचार्यों एवं कवियों के काव्य-लक्षण दृष्टव्य हैं-

(1) **आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी** के अनुसार- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने काव्य में चमत्कार की प्रधानता को अनिवार्य मानते हुये लिखा है कि- ''शिक्षित कवि की उक्तियों में चमत्कार का होना परम आवश्यक है। यदि कविता में चमत्कार नहीं, कोई विलक्षणता नहीं, तो उससे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती।''

(2) **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार- ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी, जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं।''

(3) **महाकवि जयशंकर प्रसाद** के अनुसार- ''काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है।''

उपर्युक्त काव्य-परिभाषाओं का समन्वयात्मक सार-तत्व यही है कि अर्थोपस्कृत शब्द ही काव्यत्व के अधिकारी हैं, केवल शब्द नहीं क्योंकि अर्थविहीन शब्द का तो कोई महत्व नहीं होता है। शब्द और अर्थ का सम्बन्ध जल और उसमें उठने वाली तरंग के समान अटूट और अविच्छिन्न है। अतः 'शब्दार्थ-युगल' को ही काव्य मानना उचित प्रतीत होता है।

काव्य के लक्षण– काव्य के लक्षण तीन माने गये हैं–

(1) स्थायित्व, (2) व्यक्तित्व का प्रतिफलन, (3) रागात्मकता।

(1) **स्थायित्व**– साहित्य की प्रत्येक रचना का अपना स्थायी महत्व होता है। इस स्थायित्व का मूल-कारण यह है कि उसमें रचयिता के व्यक्तित्व का प्रभाव मिश्रित रूप से रहता है। इस कारण उसी विषय पर दूसरे व्यक्ति की रचना पहली रचना की स्थानापन्न नहीं हो सकती है। जैसे- 'राम' के चरित्र को लेकर तुलसीदास, केशवदास और मैथिलीशरण गुप्त ने महाकाव्यों की रचनायें की हैं।

(2) **व्यक्तित्व का प्रतिफलन**– व्यापक दृष्टि से व्यक्तित्व के अन्तर्गत किसी व्यक्ति के जीवन के प्रति दृष्टिकोण, उसकी विचारधारा, उसका ज्ञान, उसकी अनुभूतियाँ, पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति, उसकी रुचि और उसके व्यवहार आदि को समन्वित रूप में माना जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक कवि की रचना अपने आप में विशिष्ट होती है। वैयक्तिक विशेषताओं के कारण इन रचनाओं में अन्तर पाया जाता है। इसी अन्तर को व्यक्तित्व का प्रतिफलन कहते हैं। इस प्रतिफलित व्यक्तित्व के कारण ही काव्य-रचनायें अमर हो जाती हैं।

(3) **रागात्मकता**– काव्य का तीसरा प्रमुख लक्षण उसकी रागात्मकता है। काव्य में विविध भावनाओं और अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यंजनायें होती हैं, जो हमारे हृदय को आन्दोलित करती हैं। इस प्रकार काव्य अपनी भावाभिव्यंजक क्षमता के कारण काव्यत्व को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार उक्त तीनों लक्षणों से युक्त होने पर ही कोई रचना 'काव्य' कहलाती है।

उपर्युक्त काव्य की परिभाषाओं, लक्षणों की व्याख्या से काव्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। **निष्कर्षतः** यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार ईश्वर के अनेक रूप और अनेक नाम हैं, उसी प्रकार काव्य भी नाना रूपों और विभिन्न संज्ञाओं से विभूषित है। उसकी आत्मा का साक्षात्कार भावनाओं और अनुभूतियों के प्रकाश में ही किया जा सकता है। अतः भारतीय आचार्यों के लक्षणों को सर्वगुण-सम्पन्न, संयत एवं व्यावहारिक माना जा सकता है।

प्रश्न–2. काव्य के प्रमुख तत्व कौन–कौन से हैं? संक्षेप में वर्णन कीजिये।

उत्तर– 'काव्य' के प्रमुख रूप से चार तत्व माने गये हैं–

काव्य के तत्व– (1) भाव, (2) कल्पना, (3) बुद्धि, (4) शैली।

(1) **भाव**– भाव कविता का आत्म-तत्व है। साहित्य का मुख्य लक्ष्य पाठक या श्रोता या दर्शक के हृदय को भावनाओं से आप्लावित कर देना होता है। साहित्य का रचनाकार इस लक्ष्य की पूर्ति भावों के चित्रण द्वारा करता है।

(2) **कल्पना**– काव्य का दूसरा तत्व कल्पना है। काव्य में भावनाओं का चित्रण कल्पना-शक्ति के द्वारा होता है। कवि एक साधारण घटना को भी कल्पना के रंगों से रंग कर एक

ऐसा भव्य रूप प्रदान करता है कि वह चित्रण हमारे हृदय को बरबस ही आकर्षित कर लेता है और दूसरों के सुख दुःख हमारे सुख-दुःख बन जाते हैं।

(3) बुद्धि– काव्य का तीसरा तत्व 'बुद्धि' है। बुद्धि द्वारा ही तथ्यों, विचारों और सिद्धान्तों की विवेचना होती है और उनका निर्धारण होता है। काव्य में किसी न किसी मात्रा में तथ्यों, विचारों और सिद्धान्तों का भी समावेश होता है। इसलिये बुद्धि के अभाव में कोरी भावनाओं का स्पन्दन दुःखी व्यक्ति के चीत्कार के समान हो जायेगा, क्योंकि बुद्धि ही भावनाओं को विचारों की माला में गूँथ कर उन्हें काव्य-रूप प्रदान करती है।

(4) शैली– काव्य का चौथा तत्व शैली है। साहित्यकार जिस भाषा और ढंग से अपने भावों या विचारों को व्यक्त करता है, वह उसकी शैली कहलाती है। शैली के अन्तर्गत भाषा, शब्द-चयन, अलंकारों एवं छन्दों का प्रयोग, काव्य-रूप आदि का समावेश किया जाता है।

इस प्रकार भाषा-शैली आदि कला-तत्वों से काव्य के शरीर की रचना होती है और कल्पना एवं भाव-तत्व उस काव्य-शरीर में प्राणों का संचार करते हैं।

प्रश्न–3. 'काव्य–प्रयोजन' के सम्बन्ध में संस्कृत एवं हिन्दी के आचार्यों के मतों की समीक्षा कीजिये।

अथवा

हिन्दी काव्य–शास्त्र में कितने प्रकार के काव्य–प्रयोजन माने गये हैं? सक्षेप में लिखिये।

अथवा

आधुनिक काल के कवियों के 'काव्य–प्रयोजन' के स्वरूप की विवेचना कीजिये।

अथवा

भारतीय मत में काव्य का प्रयोजन क्या है?

अथवा

भारतीय आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मत के अनुसार काव्य प्रयोजन की व्याख्या कीजिये।

उत्तर– इस संसार में मनुष्य जो भी कार्य करता है, उसमें उसका कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। इसी परम्परा के आधार पर काव्य-रचना के पीछे भी रचनाकार का कोई न कोई प्रयोजन होता है। यह प्रयोजन ही उसका काव्य-प्रयोजन कहलाता है। काव्य के प्रयोजन के निर्धारण के विषय में प्राचीन-काल से काव्यशास्त्र में अनेक मतवाद प्रचलित हैं। संक्षेप में, इन मतों की समीक्षा निम्नानुसार दृष्टव्य है–

संस्कृत काव्य–शास्त्र के अनुसार काव्य–प्रयोजन– संस्कृत काव्यशास्त्र के आदि आचार्य भरतमुनि ने नाट्य-प्रयोजनों का उल्लेख करने के माध्यम से 'जनहित' को ही नाट्य या काव्य का प्रयोजन माना है। आचार्य भरत के पश्चात् आचार्य भामह ने केवल कवि की दृष्टि से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कलाओं में विलक्षणता, कीर्ति और प्रीति को काव्य-प्रयोजन स्वीकार किया है। आचार्य वामन ने कर्ता की दृष्टि से प्रीति और कीर्ति दो काव्य-प्रयोजन माने हैं, जबकि आचार्य अभिनव गुप्त ने कवि और पाठक (सहृदय) दोनों की दृष्टि से 'प्रीति' को ही प्रधान काव्य-प्रयोजन माना है। राजशेखर के अनुसार सहृदय की दृष्टि से काव्य का प्रयोजन आनन्द की प्राप्ति है और कवि की दृष्टि से काव्य का प्रयोजन अक्षय कीर्ति है।

आचार्य मम्मट का संस्कृत–काव्य शास्त्र में मूर्धन्य स्थान है। इन्होंने अपने 'काव्यप्रकाश' में काव्य–रचना के प्रयोजनों पर विस्तारपूर्वक विचार करते हुये लिखा है कि–

''काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेश युजे॥''

अर्थात् यश-प्राप्ति, सम्पत्ति का लाभ, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा, रोग आदि विपत्तियों का नाश, तुरन्त ही उच्च-कोटि के आनन्द का अनुभव और प्रेयसी के समान मधुर उपदेश देने के लिये काव्य-ग्रंथ प्रयोजनीय हैं। इस आधार पर काव्य के निम्नलिखित प्रयोजन माने जा सकते हैं-

(1) **यश-प्राप्ति-** प्राचीन काल से 'यश-प्राप्ति' मानव-जीवन का एक उद्देश्य रहा है। कविगण भी यश-प्राप्ति के उद्देश्य से काव्य-रचना करते हैं। रचनाकार की रचनायें ही उन्हें अजर-अमर बना देती हैं। कुछ महान् कवि ऐसे भी हो सकते हैं, जिनका उद्देश्य भले ही प्रारम्भ में यश-प्राप्ति न रहा हो, लेकिन काव्य-रचना के बाद वे अपनी रचना के कारण सदैव के लिये साहित्य के क्षेत्र में अमर हो गये हैं। उदाहरण के लिये महात्मा कबीरदास, जायसी, सूरदास, तुलसीदास आदि ऐसे ही कवि हुये हैं, जिनका हम आज भी यशोगान करते हैं।

(2) **अर्थ-प्राप्ति-** मानव-जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण प्रयोजन धन-प्राप्ति होता है। कवियों द्वारा भी धन-प्राप्ति के लिये काव्य-रचनायें लिखी गयी हैं। रीतिकाल के अधिकांश दरबारी कवियों ने धन-प्राप्ति के प्रयोजन से अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में काव्य-रचनायें लिखीं हैं। कविवर बिहारीलाल जी के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि उन्हें प्रत्येक दोहे की रचना के लिये एक सोने की मुद्रा देने का वचन उनके आश्रयदाता राजा के द्वारा दिया गया था। इसी प्रकार आदिकाल के कवि भी दरबारी थे, जो अपने आश्रयदाता राजा की वीरता, ऐश्वर्य एवं रानियों की सुन्दरता की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से किया करते थे और उनसे उपहार प्राप्त करते थे। आधुनिक युग के कुछ कवियों में भी यह प्रवृत्ति दिखायी देती है।

(3) **व्यवहार-ज्ञान-** समाज को सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिये व्यवहार-ज्ञान आवश्यक होता है। इसी उद्देश्य से अनेक कवियों ने अपने निकट के सम्बन्धियों, मित्रों या सन्तान अथवा समाज के सभी लोगों के लिये नीति एवं व्यवहार की शिक्षा देने के लिये काव्य-रचनायें लिखी हैं। इस दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरित मानस' महत्वपूर्ण चरित महाकाव्य है। इसमें मानव-जीवन के मर्यादित आदर्श चरित्र का व्यावहारिक रूप दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार बिहारी, रहीम और वृन्द आदि ने भी नीतिपरक काव्य-रचनायें की हैं।

(4) **लोक-हित-** कवि समाज का मार्गदर्शक होता है। वह लोक-हित की दृष्टि से भी काव्य-रचनायें लिखता है। अनेक कवियों ने अपने युग और समाज को अनिष्ट से बचाने के लिये काव्य-रचनायें लिखीं हैं। 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य के रचयिता श्री रामधारी सिंह दिनकर ने अपने काव्य में विश्व को अनिष्ट से बचाने के लिये शान्ति का संदेश दिया है। इसी प्रकार लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास, महाकवि जयशंकर प्रसाद आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

(5) **आत्म-शान्ति-** प्राचीन भारतीय मानव-जीवन में 'आत्म-शान्ति' एक महत्वपूर्ण जीवनोद्देश्य रहा है। अनेक ऐसे कवि हुये हैं, जिन्होंने आत्म-शान्ति के लिये काव्य-रचनायें

लिखी हैं। इस दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने अपने महाकाव्य रामचरित मानस के प्रारम्भ में ही लिखा है-

''स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा॥''

इसी परम्परा का कुछ अन्य भक्तिकाल के कवियों ने भी अनुगमन किया है। कई बार कवियों को काव्य-रचना के बाद अपूर्व शान्ति एवं आनन्द का अनुभव होता है। अतः इसे एक महत्वपूर्ण प्रयोजन माना जाता है।

(6) **उपदेश-** अपने उपदेश, विचार या सिद्धान्त को मर्मस्पर्शी बनाने के लिये काव्य को माध्यम बनाया जाता है। कविता का हृदय पर शीघ्र प्रभाव पड़ता है। इसीलिये कहा जाता है कि जो काम तोप, बम और तलवार से नहीं हो सकता है, वह काम साहित्य के द्वारा सरलतापूर्वक किया जा सकता है। साहित्य को मुर्दा व्यक्ति में प्राण फूँकने वाला माना जाता है। इस दृष्टि से महात्मा कबीरदास, नानक, गोस्वामी तुलसीदास और बिहारी के काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बिहारी के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने निम्नलिखित छोटे से दोहे के माध्यम से नवविवाहिता पत्नी के रास-रंग में डूबे आश्रयदाता राजा को आत्मबोध कराया था। यह दोहा दृष्टव्य है-

''नहिं पराग नहिं मधुस्मधु, नहिं विकास यहिकाल।
अली कली ही स्यों बिंध्यो, आगे कौन हवाल?''

हिन्दी काव्यशास्त्र में काव्य-प्रयोजन- हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों ने इस विषय में प्रायः संस्कृत के आचार्यों का ही अनुकरण किया है। आचार्य कुलपति ने काव्य के प्रयोजन बताते हुये लिखा है-

''जस, सम्पत्ति, आनन्द अति, दुखिन डारै खोइ।
होत कवित्त तें चतुराई, जगत बाम बस होइ॥''

आचार्य देव केवल यश को ही काव्य-प्रयोजन मानते हैं-

''ऊँच नीच तरु कर्मबस, चलो जात संसार।
रहत भव्य भगवंत-जस, नव्य काव्य सुख सार॥''

कीर्ति, धन, मनोरंजन, मंगल (अनिष्ट का नाश) और उचित उपदेश- ये पांच काव्य-प्रयोजन आचार्य सोमनाथ ने माने हैं-

''कीरति, वित्त, विनोद अरू अति मंगल को देति।
करै भलो उपदेश नित (सरस) कवित्त चित्त चेति।।''

आचार्य भिखारीदास ने तपपुंजों का फल (चतुरवर्ग-फल प्राप्ति) सम्पत्ति, यश और आनन्द- ये चार काव्य-प्रयोजन स्वीकार किये हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद ने 'ज्ञान-विस्तार' और 'मनोरंजन' को ही काव्य-प्रयोजन माना है। लेखक का उद्देश्य सदा से यही रहा है कि उसके लेखों से पाठकों का मनोरंजन भी हो और साथ ही उनके ज्ञान की सीमा भी बढ़ती रहे। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'ज्ञान' और 'आनन्द' को काव्य का प्रयोजन माना है।

महाकवि जयशंकर प्रसाद ने 'मनोरंजन' और 'शिक्षा' को काव्य-प्रयोजन माना है। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने 'स्वान्त-सुख' और 'लोकहित' को काव्य-प्रयोजन स्वीकार किया

है। **श्रीमती महादेवी वर्मा** के अनुसार, काव्य का प्रयोजन मानव- हृदय में समाज के लिये अनुकूलता उत्पन्न करना है। उनका मत है कि "साहित्य का उद्देश्य समाज के अनुशासन के बाहर स्वच्छन्द मानव-स्वभाव में उसकी मुक्ति को अक्षुण्ण रखते हुये, समाज के लिये अनुकूलता उत्पन्न करना है।"

आधुनिक युग के सुप्रसिद्ध कवि **मैथिलीशरण गुप्त** ने कला का व्यापक प्रयोजन समाज के हित में स्वीकार करते हुये कहा है-

"मानते हैं जो कला को कला के अर्थ ही।
स्वार्थनी करते कला को व्यर्थ ही।।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य का उद्देश्य मानव-जाति का हित करना मानते हैं। वे स्पष्ट रूप से लिखते हैं- "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ, जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक संस्कृत और हिन्दी के विभिन्न विद्वानों और कवियों ने अपने-अपने ढंग से काव्य-प्रयोजन के भेदों और उनके स्वरूप पर प्रकाश डाला है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक काल में काव्य-प्रयोजनों पर मौलिकता से विचार हुआ है। आधुनिक आचार्यों और कवियों ने युगीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर काव्य-प्रयोजनों का विवेचन किया है।

प्रश्न-4. काव्य के हेतु कौन-कौन से माने गये हैं? संक्षेप में प्रत्येक पर प्रकाश डालिये।

अथवा

काव्य-रचना की प्रेरणा व्यक्ति को कहां से प्राप्त होती है? इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचार स्पष्ट कीजिये।

अथवा

'काव्य-रचना' के कारणों पर प्रकाश डालिये।

अथवा

काव्य हेतु किसे कहते हैं? सोदाहरण विवेचना कीजिये।

उत्तर- कवि-कर्म को 'काव्य' कहते हैं। काव्य एक ऐसी कृति है, जिसके लिये कोई न कोई कारण या हेतु अनिवार्य होता है। काव्य-हेतुओं से तात्पर्य है- काव्य-रचना के कारण। जैसे- प्रतिभा, व्युत्पत्ति आदि। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि काव्य-हेतु वह शक्ति है जिससे कवि काव्य की रचना करने में समर्थ होता है।

संस्कृत काव्य-शास्त्र में **भामह** सबसे पहले आचार्य हैं, जिन्होंने काव्य-हेतुओं का विवेचन करते हुये 'प्रतिभा' को काव्य का हेतु माना है। आचार्य **मम्मट** संस्कृत काव्य-शास्त्र के सबसे अधिक प्रभावशाली आचार्य हुये हैं। इन्होंने शक्ति (प्रतिभा), निपुणता और अभ्यास को काव्य के हेतु माना है। उनका निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है-

"शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥"

आचार्य **मम्मट** ने अपने मत की व्याख्या करते हुये लिखा है कि शक्ति एक विशेष प्रकार का संस्कार होता है जिसे कवित्व का बीज रूप कहा जा सकता है। इसके बिना काव्य की रचना नहीं हो सकती है। स्थावर जंगम आदि लोक-वृत्त, व्याकरण अभिधान कोश, महाकवियों के काव्य आदि के मनन और चिन्तन से प्राप्त ज्ञान 'व्युत्पत्ति' कहलाता है। काव्य-रचना के लिये निरन्तर किया गया प्रयत्न 'अभ्यास' कहलाता है। इस प्रकार प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों ही काव्य के आवश्यक हेतु हैं। इनमें से पृथक् रूप से किसी एक को काव्य का हेतु नहीं माना जा सकता है। इनके स्वरूप की विवेचना निम्नानुसार दृष्टव्य है-

हिन्दी साहित्य के आचार्यों के अनुसार काव्य के हेतु- संस्कृत आचार्यों की भाँति हिन्दी साहित्य के आचार्यों के 'काव्य-हेतु' विषयक विभिन्न मत प्राप्त होते हैं। **डॉ. भागीरथ प्रसाद** ने काव्य के तीन हेतु माने हैं, इनका क्रमशः विवेचन निम्नानुसार है-

(1) **प्रेरक-** प्रत्येक कवि की सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक परिस्थितियाँ तथा उसकी प्रकृति अलग-अलग होती है। इनसे ही उसे काव्य की रचना करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

(2) **निमित्त-** काव्य-रचना का निमित्त कारण कवि की प्रतिभा होती है। प्रतिभा कवि की उर्वर कल्पना, सौन्दर्यानुभूति, संवेदनशीलता, शब्द और अर्थ तत्व की सूक्ष्म परख में देखी जा सकती है।

(3) **उपादान-** काव्य-रचना का उपादान कारण कवि का शास्त्री ज्ञान, सत्संग, श्रवण और मनन है। काव्य-रचना के विकास के लिये कवि में इनका होना अत्यन्त आवश्यक होता है। इसे अभ्यास और अध्ययन द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

उपर्युक्त काव्य-हेतुओं के परिप्रेक्ष्य में यदि यहां यह विचार किया जाये कि कवि को 'काव्य-रचना' की प्रेरणा कहां से प्राप्त होती है ? तो हम पाते हैं कि इस सम्बन्ध में विद्वानों के मत अलग-अलग हैं। उदाहरण के लिये, आदि-कवि वाल्मीकि को रचना की प्रेरणा 'क्रौंच-वध' की प्रसिद्ध घटना से प्राप्त हुयी थी और महाकवि कालिदास को मेघ से काव्य-रचना की प्रेरणा मिली थी।

हिन्दी साहित्य के भक्ति-काल के कवियों की मूल प्रेरणा का स्रोत इष्टदेव का चरित्र रहा है। भारतेन्दु-युग के कवि अपने समाज और राष्ट्र की दुर्दशा से क्षुब्ध होकर काव्य की रचना में प्रवृत्त हुये थे। महादेवी वर्मा और सुमित्रानन्दन पंत ने विरह-वेदना को काव्य-रचना का मूल कारण माना है। कविवर पंत जी की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं-

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान॥"

इसी प्रकार प्रगतिवादी और नयी कविता के कवियों की प्रेरणा का स्रोत मार्क्सवादी जीवन-दर्शन, सामाजिक विषमता, शोषक-वर्ग की विलासिता और उत्पीड़न की प्रवृत्ति तथा शोषित-वर्ग की दीनता-हीनता आदि रही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न युगों में विभिन्न वर्गों के कवियों की काव्य-रचना की प्रेरणा के मूलाधार भी भिन्न-भिन्न रहे हैं।

इन्हें संक्षेप में निम्नलिखित रूप में विभाजित किया जा सकता है–

(1) बाह्य प्रकृति और जगत् के किसी दृश्य, घटना, परिस्थिति या अवस्था का प्रभाव।

(2) किसी व्यक्ति, आश्रयदाता, गुरु या मित्र की प्रेरणा।

(3) किसी विचार या जीवन–दर्शन का प्रभाव।

(4) लौकिक या अलौकिक प्रणय, विरह या शोक की अनुभूति।

उपर्युक्त में से प्रथम मूलाधार प्रकृति, जगत् व्यक्ति आदि के सम्पर्क से उत्पन्न किसी विचार या भाव की अनुभूति ही काव्य की प्रेरणा की मूल–स्रोत है। प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूतियाँ काव्य की प्रेरणा नहीं बन सकती हैं। जिस व्यक्ति में काव्य–रचना की प्रतिभा या शक्ति होगी, उसी की अनुभूतियाँ काव्य–रचना की प्रेरणा दे सकती हैं। इसके साथ ही अनुभूतियों की सघनता एवं मार्मिकता का योग भी महत्वपूर्ण है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि प्रतिभा या शक्ति, निपुणता और अभ्यास ही सर्वमान्य रूप में काव्य के हेतु हैं। इनके विद्यमान होने पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की कुछ विशेष मार्मिक अनुभूतियाँ ही कवि के हृदय को काव्य–रचना के लिये प्रवृत्त करती हैं और कवि के हृदयस्थ–भाव जाग्रत होकर काव्य का रूप धारण कर लेते हैं।

इकाई-2

लघु एवं दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. रस किसे कहते हैं? काव्य में रस का महत्व प्रदर्शित करते हुये कतिपय विद्वानों के रस सम्बन्धी महत्वपूर्ण विचारों की विवेचना कीजिये।

उत्तर– किसी काव्य को पढ़ने से या नाटकादि देखने से हमें जो आनन्द प्राप्त होता है, उस आनन्द का वर्णन शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

किसी कारुणिक प्रसंग को देखकर हमारे मन में करुणा जाग्रत होती है, ओजपूर्ण कविता पढ़कर हमारा हृदय साहस और वीरता के भाव से भर जाता है। इन्हीं विभिन्न भावों के जाग्रत होने से हृदय में जो अवर्णनीय अलौकिक आनन्द होता है, वही रस कहलाता है। साहित्य दर्पणाकार आचार्य विश्वनाथ ने रस की परिभाषा करते हुये कहा है कि– 'रस्यते इति रसः' अर्थात् जो चखा जाये अथवा जिसका आस्वादन किया जाये, वही रस कहलाता है।

रस का महत्व– काव्य–शास्त्र के आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना है, यह तथ्य सर्वमान्य है, क्योंकि रस–युक्त काव्य को ही काव्य कहा जाता है। रस का महत्व सर्वोपरि है, क्योंकि उसके बिना काव्य का अस्तित्व ही नहीं, वह मुर्दा है, निष्प्राण है अतः यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि रस काव्य का महत्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि वही 'आनन्द' विशेष की प्राप्ति का कारण बनता है। वैसे आनन्द की विशेष स्थिति का निर्माता भी रस है इसीलिये 'काव्यानन्द' को 'ब्रह्मानन्द–सहोदर' कहा जाता है। काव्य का ध्येय भी लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि करना है। कलाकार जिन भावों का अनुभव करता है, रस–तत्व के द्वारा उन्हीं का साक्षात्कार वह संसार के अन्य प्राणियों को भी कराना चाहता है। कवि के हृदय का पाठक से जितना ही अधिक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होगा, उतनी अधिक अभिव्यक्ति से रसमयता का समावेश होगा।

'साहित्य–दर्पण' के लेखक आचार्य विश्वनाथ ने रसमय वाक्य को ही काव्य माना है– 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्।' वेद में 'रसो वै सः' कहकर ईश्वर को रस माना गया है। ध्वनि, रीति, अलंकार, वक्रोति आदि अंध–रूप होकर, रस का उत्कर्ष बढ़ाते हैं। रस ही काव्य की आत्मा है। सरस काव्य में ही पाठक रसलीन हो जाता है। अपनी यथार्थ स्थिति को भुलाकर एक भावलोक में विचरण करने लगता है। सरस काव्य ही पाठक को परमानन्द की स्थिति में लाता है। ऐसे काव्य के आस्वादन से हृदय विशाल हो जाता है।

प्रमुख विद्वानों के विचार– रस का महत्व प्रतिपादित करते हुये कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं–

1. 'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोद् रस–निष्पतिः।'– **भरत मुनि**
2. 'विभावैरनु भावैश्च सात्विकैः– व्यभिचारिणी श्रानीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भाव रसरमृतः।'– **आचार्य विश्वनाथ**
3. अन्तःकरण में रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सतोगुण के सुन्दर स्वच्छ प्रकाश होने से 'रस' का साक्षात्कार होता है।– **आचार्य विश्वनाथ**
4. 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था को ज्ञान–दशा कहा जाता है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था को 'रस–दशा' कहा जाता है।'– **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल**

उपर्युक्त विभिन्न विद्वानों, आचार्यों के कतिपय विचारों से यही निष्कर्ष निकलता है कि रस हृदयगत भावों से उत्पन्न आनन्द विशेष की स्थिति है, जिसका आस्वादन किया जाता है।

प्रश्न–2. रस की परिभाषा देकर रसांगों का परिचय दीजिये।

अथवा

रस–निष्पत्ति से आप क्या समझते हैं? रस के प्रमुख अंग कौन–कौनसे हैं?

अथवा

रस की परिभाषा लिखते हुये उसके चार अंगों का सोदाहरण परिचय दीजिये।

अथवा

रस शब्द की व्युत्पत्ति देते हुये रस के प्रकार उदाहरण सहित बताइये।

उत्तर– ***नोट–*** *रस की परिभाषा हेतु पिछले प्रश्न का अवलोकन करें।*

रस की निष्पत्ति– यह मानव–हृदय की सहज प्रवृत्ति है कि वह रस–विशेष से सहज ही आप्लावित होकर उसके अनुकूल प्रवाहित होने लगता है। उसकी यह आनन्दानुभूति ही रस–प्रक्रिया कहलाती है और रस का यह प्रस्फुटन ही रस–निष्पत्ति है।

काव्य अथवा नाट्य–शास्त्र के अनुसार, शास्त्रीय रीति से रस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले प्रथम आचार्य **भरत मुनि** थे, जिन्होंने रस की निष्पत्ति के सम्बन्ध में बहुत ही व्यवस्थित ढंग से यह बात कही है– 'विभावानुभाव व्यभिवारिसयोगद् रस–निष्पत्तिः' अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारी–भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से वसुन्धरा के हृदय–प्रदेश में व्याप्त मिट्टी मे गन्ध पहले से ही विद्यमान रहती है किन्तु वर्षा की बूंदें उसे सहज जाग्रत कर देती हैं और सोंधी सुगन्ध समस्त वायुमण्डल में भर जाती है, उसी प्रकार से हृदय में व्याप्त सभी प्रकार के स्थायी–भाव आलम्बन का आश्रय पाकर जाग उठते हैं।

अतः यह कहना प्रायः कठिन है कि रस की निष्पत्ति कब और कैसे होगी? यह सब तत्कालीन पात्र, परिस्थिति और वातावरण आदि के रूप में आलम्बन और उद्दीपन पर निर्भर करता है जो विभाव के रूप में पात्र के हृदय में सुप्त स्थायी भावों को जाग्रत करता है और फिर अनुभाव उन्हें पोषित कर संचारियों के साथ उद्भूत करा देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रस-निष्पत्ति के प्रमुख अंग हैं-1. स्थायी भाव, 2. विभाव, 3. अनुभाव, एवं 4. संचारी-भाव।

1. **स्थायी भाव-** मानव मन या हृदय में भावों का प्रवेश और प्रस्थान सदा ही रहता है। इन भावों में कुछ भाव ऐसे भी होते हैं जो आने के बाद विलीन हो जाते हैं जबकि कुछ भाव ऐसे भी होते हैं जो आने के बाद स्थायी रूप से अंकित हो जाते हैं, स्थायी रूप से अंकित होने वाले भावों को ही स्थायी भाव कहते हैं।

सामान्यतः स्थायी भाव नौ हैं फिर भी इनकी प्रमुख मात्रा दस मानी गई है जो इस प्रकार से हैं-

रस के नाम	स्थायी भावों के नाम
1. श्रृंगार	रति
2. हास्य	हास (हँसी)
3. करुण	शोक
4. रौद्र	क्रोध
5. वीर	उत्साह
6. भयानक	भय
7. वीभत्स	घृणा
8. अद्भुत	विस्मय
9. शान्त	निर्वेद
10. वात्सल्य	वत्सल।

2. **विभाव-** विभाव का अर्थ कारण है। **भरत मुनि** ने नाट्यशास्त्र में लिखा है-

जो वाणी और अंगों के अभिनय के आश्रय से अनेक अर्थों की विभावना (उद्बोधन) या अनुभव कराते हैं, अर्थात् उन्हें आस्वाद के योग्य बनाते हैं, उन्हें विभाव कहते हैं।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार- 'विभाव से अभिप्राय उन वस्तुओं या विषयों के वर्णन से है जिनके प्रति किसी प्रकार का भाव या संवेदना होती है।'

विभाव के दो प्रकार हैं- (क) आलम्बन विभाव और (ख) उद्दीपन विभाव।

(क) आलम्बन विभाव- आलम्बन के विषय में कहा गया है-

'आलम्बनों नायिकादिस्तमालम्बय रसोद्गमात् ।'

अर्थात् आलम्बन विभाव वे हैं जिन (पात्रों) का आलम्बन लेकर सामाजिक के रत्यादि स्थायी भाव रस रूप में बदल जाते हैं; जैसे- श्रृंगार रस में नायक-नायिका युद्ध, क्षेत्र में, वीर रस में अर्जुन और कर्ण आदि। आलम्बन विभाव के भी दो भेद हैं-

(1) विषय और (2) आश्रय।

(1) **विषय-** विषय को आलम्बन के नाम से भी जाना जाता है। विषय के आलम्बन से रस की अनुभूति होती है। दूसरे शब्दों में, जिस पात्र के प्रति किसी के भाव जाग्रत होते हैं वही आलम्बन होता है। उदाहरण के लिये वीर रस में महाभारत के युद्ध में कर्ण को देखकर अर्जुन के मन में उत्साह उत्पन्न होता है। उस समय कर्ण आलम्बन या विषय है।

(2) **आश्रय-** आश्रय के विषय में कहा गया है- 'आश्रयस्तु आधारः, अर्थात् आश्रय आधार होता है।'

उदाहरणार्थ- वीर रस में महाभारत के युद्ध में कर्ण को देखकर अर्जुन के हृदय में उत्साह भाव उत्पन्न होता है, यहाँ पर अर्जुन आश्रय है।

(ख) उद्दीपन- आश्रय के हृदय में जाग्रत हुये स्थायी भाव को जो भाव और अधिक उद्दीप्त करते हैं (बढ़ाते हैं) उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं, उद्दीपन विभाव के विषय में साहित्य-दर्पण में कहा गया है- 'उद्दीपन विभावस्ते रसमुद्दीपयन्ति।' अर्थात् जो वस्तु या स्थिति अंकुर के समान स्थायी भावों के लिये खाद, पानी और सूर्य की किरणों का काम करते हैं उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं। उदाहरण के लिये श्रृंगार रस में चांदनी रात, फूलों की सुगन्धित हवा, एकान्त प्रदेश, नदी का एक छोर आदि।

3. **अनुभाव-** स्थायी भाव के पश्चात् आश्रय की शारीरिक चेष्टायें उत्पन्न होती हैं, इन शारीरिक चेष्टाओं को अनुभाव कहते हैं। अनुभाव के विषय में आचार्यों के मत इस प्रकार से हैं-

(क) 'भावं अनुभावः', अर्थात् विभाव के बाद अनुभाव उत्पन्न होते हैं।

(ख) 'अनुभावयन्ति इति अनुभावः' अर्थात् जो रति आदि स्थायी भावों का अनुभव कराते हैं।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि आश्रय की वे बाह्य चेष्टायें जो स्थायी भावों को जगाकर इनका अनुभव भी कराती हैं, उन्हें अनुभाव कहा जाता है। उदाहरण के लिये श्रृंगार रस में श्रीराम का सीता को टकटकी लगाकर देखना, आंखों को तिरछा करना, मधुरालाप, मुस्कराना आदि अनुभाव हैं। इस प्रकार के अनुभावों की संख्या तो अनंत है। फिर भी मुख्य रूप से आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक अनुभाव ही माने गये हैं।

4. **संचारी भाव (व्यभिचारी भाव)-** संचारी भाव का दूसरा नाम व्यभिचारी भाव भी है। ये स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं और उन्हें लुप्त भी करते हैं। इसलिये यह कहना बिल्कुल सत्य है कि ये कभी भी स्थिर नहीं रहते हैं। स्थायी भाव में रस निष्पत्ति करके कभी न स्थिर रहने वाले मनोविकार या चित्तवृत्तियाँ ही संचारी भाव हैं।

(1) निर्वेद, (2) ग्लानि, (3) शंका, (4) श्रम, (5) धृति, (6) जड़ता, (7) हर्ष, (8) दैन्य, (9) उग्रता, (10) चिन्ता, (11) त्रास, (12) असूया, (13) अमर्ष, (14) गर्व, (15) स्मृति, (16) मरण, (17) दम, (18) स्वप्न, (19) निद्रा, (20) विरोध, (21) व्रीड़ा (लज्जा), (22) अपस्मार (मृगी, मिरगी), (23) मोह, (24) मति, (25) अलसता, (26) आवेग, (27) वितर्क, (28) अवहिला, (29) व्याधि, (30) उन्माद, (31) विषाद, (32) औत्सुक्य (33) चपलता।

यह ज्ञातव्य है कि स्थायी भाव तो रस परिपारक तक सीमित रहता ही है और इसे कोई भी विरुद्ध या अविरुद्ध भाव प्रभावित नहीं करता है, जबकि संचारी भाव तरंगों के समान उद्बुद्ध और विलीन होते रहते हैं। यदि कोई स्थाई भाव किसी अन्य स्थाई भाव के सहकारी कारण के रूप में उपस्थित होता है तो वह भी संचारी भाव ही होता है, स्थाई भाव नहीं।

प्रश्न–3. रस के प्रमुख भेदों पर प्रकाश डालते हुये सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

अथवा

रस के प्रमुख भेदों को उदाहरण सहित समझाइये।

अथवा

श्रृंगार रस एवं करुण रस को सोदाहरण लिखिये।

अथवा

वात्सल्य एवं वीर रस को सोदाहरण लिखिये।

उत्तर– आचार्य **भरत मुनि** ने अपने नाट्यशास्त्र में श्रृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स रसों को प्रमुख स्थान दिया है। इनसे ही क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति मानी गई है। इस प्रकार से कुल आठ रसों का उल्लेख करते हुये कहा है– **'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।'**

फिर बाद में शान्त रस की महत्ता स्वीकार करते हुये कहा– **'शान्तोऽपि नवमो रसाः।'**

आचार्य विश्वनाथ ने वत्सल को दशम् रस कहा है। रुद्रट ने इसे प्रेयान् कहकर सम्बोधित किया है। महाराज भोज ने अपने सरस्वती कंठाभरण में रसों की संख्या बारह तक पहुँचा दी है। रूप गोस्वामी, मधुसूदन सरस्वती आदि ने भक्ति को स्वतंत्र रस कहा है। इस प्रकार से रसों की संख्या बहुत बड़ी कही गई है। सर्वमान्य रस इस प्रकार से है–

(1) श्रृंगार रस

विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से पुष्ट हुआ रति स्थायी भाव जब रस के रूप में पुष्ट होता है तब इसे श्रृंगार रस कहते हैं।

श्रृंगार रस को कुछ आचार्यों ने रसराज अर्थात् रसों के राजा की उपाधि प्रदान की है। श्रृंगार शब्द दो शब्दों के योग से बना है– 'श्रृंग + आर' काम–भाव की उत्पत्ति को 'श्रृंग' कहा जाता है, जबकि 'आर' शब्द का अर्थ गति प्राप्त होता है। इस प्रकार श्रृंगार का अर्थ काम–भाव की दशा को प्राप्त होना होता है। इसकी निष्पत्ति के लिये उत्तम स्वभाव के नायक–नायिका की स्थिति आवश्यक होती है। **श्रृंगार रस का उदाहरण–**

'राम को रूप निहारति जानकी कंगन के नग की परछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।।'

अर्थात् विवाह के अवसर पर सीताजी अपने कंगन में जटित नग में राम की शोभा को निरखकर अपनी सुध–बुध भुला बैठीं और उनकी शोभा को बिना पलक झपकाये देखने लगीं। इस उद्धरण में श्रृंगार–रस के विभिन्न अवयवों की स्थिति इस प्रकार है–

सीता– आश्रय विभाव है।

राम– आलम्बन विभाव है।

राम की सुन्दरता– उद्दीपन विभाव है।

राम के प्रतिबिम्ब को देखना, हाथ को टेके रहना, पलक न झपकना अनुभाव है, जबकि हर्ष और जड़ता संचारी भाव हैं। इस प्रकार सीता (आश्रय–विभाव) के हृदय में विद्यमान रति स्थाई भाव (अपने) पति आलम्बन (राम) की सुन्दरता को देखकर उद्बुद्ध होता हुआ तथा अनुभावों और संचारियों के योग से पुष्ट होता हुआ श्रृंगार रस के रूप में निष्पन्न हो रहा है।

श्रृंगार रस के दो भेद होते हैं–

1. **संयोग श्रृंगार–** जहाँ नायक और नायिका के परस्पर मिलन का वर्णन हो अर्थात् वे एक साथ हों तो वहां संयोग श्रृंगार होता है। उपर्युक्त उदाहरण संयोग श्रृंगार का ही है।

2. **वियोग श्रृंगार–** जब किसी कारण–वश नायक और नायिका एक–दूसरे से बिछुड़कर अपने दूसरे साथी की मधुर स्मृति में तड़पते हैं अर्थात् उनके प्रेम भाव को याद करते हुये छटपटाते हैं– तो वहाँ वियोग श्रृंगार होता है। आचार्यों ने इसका एक अन्य नाम विप्रलंभ श्रृंगार भी माना है और इसके चार भेद किये हैं– (i) पूर्वराग, (ii) मान, (iii) प्रवास, (iv) करुण।

वियोग श्रृंगार की निम्नांकित दस दशायें स्वीकार की गई हैं– (i) चिन्ता, (2) अभिलाषा, (iii) स्मृति, (iv) गुण–कथन, (v) उद्वेग, (vi) प्रलाप, (vii) उन्माद, (viii) व्याधि, (ix) जड़ता, और (x) मरण। वियोग श्रृंगार के अवयव इस प्रकार हैं–

1. **स्थायी भाव–** रति।
2. **आलम्बन विभाव–** नायक–नायिका।
3. **उद्दीपन विभाव–** प्रेम–पात्र पिछली प्रेममयी बातों–क्रियाओं की याद आना।
4. **अनुभाव–** शरीर का पीला पड़ना, निःश्वास छोड़ना, विलाप करना आदि।
5. **संचारी भाव–** दुःख और जड़ता आदि।

उदाहरण– *'बिनु गुपाल बैरिन भई कुंजैं।*
तब ये लता लगति अति शीतल,
अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।'

(2) हास्य रस

हास्य रस का स्थायी भाव हास है। जब किसी व्यक्ति या पदार्थ का अनोखा या विकृत रूप अथवा उसकी विचित्र वेश–भूषा देखकर या बातें सुनकर हृदय में विनोद अथवा हँसी का भाव उत्पन्न होता है तो यह स्थिति हास कहलाती है। यह हास नामक स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारियों के योग से हास्य रस के रूप में निष्पन्न होता है।

उदाहरण– *'हंसि–हंसि भजैं देखि दूलह दिगम्बर को,*
पाहुने जे आबैं हिमाचल के उछाह में।
सीस पर गंगा हंसे, भुजनि भुजंगा हंसे,
और हंसें वे हू, हंस हंस के उमाह में।
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में।'

स्पष्टीकरण– यह अवतरण शिव की बारात आने के अवसर पर दूल्हा बने शिवजी की विचित्र वेश–भूषा को देखकर, देखने वालों के हँसी से लोट–पोट हो जाने से सम्बन्धित है। इसमें हास्य रस के अवयव इस प्रकार हैं–

1. **आलम्बन विभाव–** दूल्हा बने शिव की नग धड़ंगों जैसी विचित्र वेशभूषा।
2. **आश्रय विभाव–** शिव को देखने वाले बाराती और नगरवासी।
3. **उद्दीपन विभाव–** शिवजी के शरीर से राख और नागों का लिपटा होना, उनकी बैल की सवारी आदि।
4. **अनुभाव–** लोगो का हंसी स लोट-पोट होना।
5. **संचारी भाव–** चपलता आदि।

इस प्रकार यहाँ 'हास' स्थायी भाव की हास्य के रूप मे निष्पत्ति हो रही है।

(3) करुण–रस

शोक स्थायीभाव से पुष्ट होकर करुण रस की निष्पत्ति होती है।

उदाहरण–

हा ! वृद्धा के अतुल धन हा ! वृद्धता के सहार।
हा ! प्राणों के परम प्रिय हा ! एक मेरे दुलारे।।
हा ! शोभा के सदन सम हा ! रूप लावण्य वारे।
हा ! बेटा हा ! हृदय धन हा ! नेत्र तारे हमारे।।

स्पष्टीकरण–

1. आश्रय	वृद्धा
2. आलम्बन	बेटा
3. उद्दीपन	पुत्र–वियोग
4. अनुभाव	हा! हा ! करके रोदन करना
5. संचारीभाव	मोह, स्मृति, चिंता, विषाद
6. स्थायीभाव	शोक

उक्त सभी से पुष्ट होकर करुण–रस का परिपाक हुआ है।

(4) वीर–रस

युद्ध अथवा अत्यन्त कठिन कार्य करने से हृदय में जो उत्साह उत्पन्न होता है, उसी से वीर–रस की निष्पत्ति होती है। वीर–रस के चार भेद माने जाते हैं–(1) युद्ध–वीर (2) दानवीर (3) दयावीर (4) धर्मवीर। **उदाहरण–** युद्ध–वीर का–

जो साहस से बढ़ता उसको केवल कटाक्ष से टोक दिया।
जो वीर बना, नभ–बीच फेंक, बरछे पर उसको रोक दिया।।
क्षण उछल गया अरि घोड़े पर, क्षण लड़ा, हो गया घोड़े पर।
बैरी दल से लड़ते–लड़ते, क्षण खड़ा हो गया घोड़े पर।।

स्पष्टीकरण–

1. आश्रय	महाराणा प्रताप
2. आलम्बन	मुगलों की सेना
3. उद्दीपन	युद्ध का समस्त रूप
4. अनुभाव	नभ–बीच फेंकना .... युद्ध–कौशल
5. संचारीभाव	हर्ष
6. स्थायीभाव	उत्साह।

(5) शान्त–रस

स्थायीभाव सम या निर्वेद है। उसके पुष्ट होने पर शान्त–रस की निष्पत्ति होती है।

उदाहरण–

मन पछतैहै अवसर बीते।
दुरलभ देह पाव हरिपद भज, करम वचन अरु ही ते।
× × × ×
सुत बनिताहि सकल स्वारथरत करन मोह इन ही ते।
अन्तहु तोहि तजेंगे पामर, तू न तजै अब हीते।।
अब नाथहिं अनुराग जाग जड़, त्याग दुराशा जी ते।
बुझै कि काम क्रोध दावानल, विषय भोग बहु घी ते।।

(6) अद्‌भुत रस

परिभाषा– विचित्र अथवा आश्चर्यजनक वस्तुओं या व्यक्तियों को देखकर अथवा उनके विषय में पढ़कर हृदय में विस्मय आदि जो भाव उठते हैं, उनसे अद्‌भुत रस उत्पन्न होता है।

उदाहरण–

'लीन्हों उखारि पहार विसाल,
चल्यो तेहिं काल विलम्ब न लायो।
मारुत नंदन मारुत को मन को,
खगराज को वेगि लजायो।।'

स्पष्टीकरण– इन पंक्तियों में पर्वत को ले जाते हुये हनुमान जी आलम्बन, आकाश में अपूर्व वेग से चलना उद्दीपन, गद्‌गद् होना अनुभाव तथा वितर्क संचारी भाव है, अतः इसमें अद्‌भुत रस है।

(7) वात्सल्य रस

परिभाषा– सन्तान स्नेह या वत्सल स्थायी-भाव से वात्सल्य–रस की उत्पत्ति होती है। प्राचीन आचार्यों ने इस रस को श्रृंगार के अन्तर्गत ही माना है, परन्तु आज यह रस अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है, वात्सल्य रस का जो अपूर्व वर्णन हिन्दी साहित्य में उपलब्ध है, वह विश्व साहित्य में अनुपम है। सूर ने इस क्षेत्र में महान् कार्य करके संसार में ख्याति प्राप्त की है।

उदाहरण–

'माँ ओ' कहकर बुला रही थी मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुंह में कुछ लिये हाथ में, मुझे खिलाने आई थी।
मैंने पूछा यह क्या लाई, बोल उठी वह 'माँ काओ'।
हुआ प्रफुलित हृदय खुशी से, मैंने कहा 'तुम्हीं खाओ'।'

स्पष्टीकरण– प्रस्तुत पंक्तियों में वत्सलता स्थायी भाव है। चिटिया आलम्बन है, 'माँ काओ' आदि तोतली बोली उद्दीपन विभाव है, प्रफुल्लता अनुभाव तथा हर्ष, स्मृति संचारी भाव है। इस प्रकार इन पंक्तियों में वात्सल्य रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। वात्सल्य–रस के दो भेद माने गये हैं–

(1) **संयोग वात्सल्य–** माता–पिता एवं संतान के समीप रहने पर संयोग वात्सल्य रस होता है।

उदाहरण– *यशोदा हरि पालने झुलावै।*

हलरावै दुलराइ मल्हावै जोई सोई कछू गावै।
कबहुं पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ, सो नंद भामिनि पावै॥

(2) **वियोग वात्सल्य–** माँ-बाप के बालक से बिछुड़ जाने पर वियोग वात्सल्य रस होता है। उदाहरण– *संदेसो देवकी सों कहियो।*
हौं तो धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो।
तुम तो टेव जानतिहि हुइहौ, तबहुँ मोहि कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहिं, माखन रोटि भावै॥

प्रश्न–1. अलंकार की परिभाषा देकर उसके भेदों पर प्रकाश डालिये।

अथवा

अलंकारों के भेद लिखिते हुये प्रमुख अलंकारों को उदाहरण सहित समझाइये।

अथवा

'अलंकार किसे कहते हैं? अर्थालंकारों के प्रमुख प्रकारों की परिभाषा देते हुये किन्हीं दो अर्थालंकारों के उदाहरण भी दीजिये।'

अथवा

उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकार को सोदाहरण समझाइये।

उत्तर– 'अलंकार' शब्द का शाब्दिक अर्थ है– 'आभूषण'। जिस प्रकार आभूषण मनुष्य के शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं, उसी प्रकार साहित्य के अलंकार साहित्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। इसीलिये कहा जाता है कि "अलंकरोति इति अलंकारः" अर्थात् जो सुशोभित करे या सुन्दरता बढ़ाये, वह अलंकार कहलाता है। जिस प्रकार कंकण, केयूर आदि आभूषण शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, ठीक उसी प्रकार काव्य की भाषा एवं भाव को सुन्दर बनाने के लिये अलंकारों का प्रयोग किया जाता है।

परिभाषा– 'काव्य शोभा करान् धर्मान् अलंकार प्रचक्षते' अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों (विशेषताओं) को अलंकार कहा जाता है। अलंकारों के तीन भेद माने गये हैं–

1. **शब्दालंकार–** जहाँ शब्दों के विशिष्ट या चमत्कारिक प्रयोग द्वारा काव्य की शोभा में वृद्धि की जाये, वहाँ शब्दालंकार होते हैं।
2. **अर्थालंकार–** जहाँ अर्थ को सुन्दर और चमत्कारपूर्ण बनाने की चेष्टा की जाये वहां अर्थालंकार होते हैं।
3. **उभयालंकार–** जहाँ शब्दों और अर्थ दोनों का ही चमत्कारपूर्ण मिश्रण हो, वहाँ उभयालंकार माने जाते हैं।

1. शब्दालंकार

शब्दालंकार के प्रमुख पांच भेद हैं– (1) अनुप्रास, (2) पुनरुक्ति प्रकाश, (3) यमक, (4) श्लेष, (5) वक्रोक्ति।

1. अनुप्रास अलंकार– जहाँ किसी काव्य–पंक्ति में एक या एक से अधिक वर्णों की सक्रम अर्थात् एक जैसे क्रम से अर्थात् पहला, दूसरा, तीसरा वर्ण आदि आवृत्ति हो वहां अनुप्रास अलंकार होता है। इसके पाँच भेद हैं–

(क) छेकानुप्रास– जहाँ किसी काव्य-पंक्ति में किसी वर्ण अथवा वर्णों की दो बार सक्रम आवृत्ति हो, जैसे– *'तुम तुंग हिमालय श्रृंग*
और मैं चंचल गति सुर सरिता।'

इस उद्धरण में 'त' और 'स' वर्णों की दो बार सक्रम आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ छेकानुप्रास है।

(ख) वृत्यानुप्रास– जहाँ किसी काव्य पंक्ति में वर्ण या वर्णों की दो बार से अधिक बार आवृत्ति हो, जैसे– *'तरनि तनुजा तट तमाल तरुवर बहुछाये।'*

इस पंक्ति में 'त' वर्ण की पाँच बार सक्रम आवृत्ति हुई है अतः यहाँ वृत्यानुप्रास अलंकार है।

(ग) लोटानुप्रास– इसे शब्दानुप्रास या वाक्यानुप्रास भी कहते हैं। इसमें समान अर्थ वाले शब्दों या वाक्यों की आवृत्ति होती है, किन्तु अन्वय करने पर उनके 'अर्थ' में भिन्नता आ जाती है, जैसे– *पूत कपूत, तो क्यों धन संचय?*
पूत सपूत, तो क्यों धन संचय?

इस उद्धरण में कपूत और सपूत के अतिरिक्त एक जैसे वाक्यों की ही आवृत्ति हुई है, किन्तु अन्वय करने से इनके अर्थ में यह अन्तर आ जायेगा कि कपूत छोड़े गये धन को नष्ट कर देगा तथा सुपुत्र स्वयं कमा लेगा, अतः धन इकट्ठा करने की आवश्यकता नहीं है।

(घ) **श्रुत्यनुप्रास–** जहाँ कानों को मधुर प्रतीत होने वाले वर्णों की आवृत्ति हो, जैसे– *'किंकिन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।'*

(ङ) **अन्त्यानुप्रास–** जहाँ अन्त में तुक मिलती हो वहां अन्त्यानुप्रास होता है। दोहा आदि प्राचीन काल की प्रायः सभी कविताओं में तुक मिलने के कारण उनमें अन्त्यानुप्रास होता है।

2. यमक– जहाँ सार्थक या निरर्थक किन्तु भिन्न अर्थ वाले शब्दों की आवृत्ति हो, वहाँ यमक अलंकार होता है, जैसे–

'कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।'

इस उद्धरण में पहला 'कनक' सोने के अर्थ में तथा दूसरा 'कनक' धतूरे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, अतः यहाँ यमक अलंकार है।

3. श्लेष अलंकार– जब किसी शब्द का एक बार प्रयोग किये जाने पर भी उसके प्रकरण की दृष्टि से एक से अधिक अर्थ निकलें, वहां श्लेष अलंकार होता है, जैसे–

'पानी गये न ऊबरै, मोती मानुष चून।'

इस उद्धरण में एक ही पानी शब्द के तीन अर्थ हैं–

(1) मोती की चमक या आभा, (2) प्रतिष्ठा या इज्जत, (3) बिना पानी का चूना। भाव यह है कि बिना कांति का मोती, बिना प्रतिष्ठा के मनुष्य और बिना पानी के चूना बेकार होते हैं। यहाँ एक ही पानी शब्द के तीन भिन्न अर्थ होने के कारण श्लेष अलंकार है। इसके दो भेद हैं– (1) अभंग श्लेष, (2) सभंग श्लेष।

(1) **अभंग श्लेष–** जहाँ किसी शब्द को तोड़ा न जाये, उसे अभंग श्लेष कहते हैं। ऊपर दिया गया उदाहरण अभंग श्लेष का है। अर्थात् उसमें शब्द को तोड़ा नहीं गया है।

2. सभंग श्लेष– जहाँ पर किसी शब्द को तोड़कर उसके एक से अधिक अर्थ निकाले जायें, उसे सभंग श्लेष कहा जाता है, जैसे– 'को यदि ए वृषभानुजा वे हलधर के वीर।'

इसमें वृषभानुजा मे सभंग श्लेष अलंकार है, क्योंकि इसको निम्नांकित दो रूपों में तोड़ा जायेगा–

(1) वृषाभानु + जा = वृषभानु की पुत्री अर्थात् राधा।

(2) वृषभ + अनुजा = बैल की बहिन अर्थात् गाय।

(4) पुनरुक्ति प्रकाश– जब शब्द की आवृत्ति के अर्थ अभिन्न हों और अवयव भी प्रत्येक बार अभिन्न हों, तब पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार होता है। जैसे– गाँव–गाँव उस होई अनंदा।

यहां 'गाँव' शब्द दो बार आया है, लेकिन दोनों बार के अर्थ एक ही हैं।

(5) वक्रोक्ति– जब किसी व्यक्ति के द्वारा एक अर्थ में कहे गये शब्द या वाक्य का कोई दूसरा व्यक्ति जान–बूझकर दूसरा अर्थ कल्पित करे, तब वक्रोक्ति अलंकार होता है। जैसे–

कौन द्वार पर? हरि मैं राधे। क्या वानर का काम यहाँ ।।

स्पष्टीकरण– राधा जी घर के अन्दर से पूँछती हैं कि द्वार पर कौन है ? श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं– हे राधे! मैं हरि हूँ। राधिका जी 'हरि' शब्द का अर्थ 'कृष्ण' न लगाकर 'वानर' अर्थ लगाती हैं और कहती हैं कि इस नगर में 'वानर' का कोई काम नहीं है।

2. अर्थालंकार

1. उपमा अलंकार– जब किसी वस्तु की उससे समान कर्म, गुण या स्वभाव वाले किसी लोक प्रसिद्ध पदार्थ से समता की जाती है, तो वहाँ उपमा अलंकार होता है। इस अलंकार के चार अंग होते हैं–

(1) **उपमेय–** जिसकी समता की जाती है।

(2) **उपमान–** जिससे समता की जाती है।

(3) **साधारण धर्म–** वह विशेषता जिसकी दृष्टि से समता की जाती है।

(4) **वाचक शब्द–** वे शब्द जिनके द्वारा समता का बोध होता है।

जैसे– राधा का मुख चन्द्रमा जैसा सुन्दर है।

इस उद्धरण में उपमा के चारों अंग विद्यमान हैं, जैसे– उपमेय– मुख, उपमान– चन्द्रमा, साधारण धर्म– सुन्दर तथा वाचक शब्द– सा, अतः यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है। इस अलंकार के लुप्तोपमा, मालोपमा आदि भेद भी होते हैं। लुप्तोपमा में इन चारों अंगों में से कोई-सा भी अंग लुप्त होता है, जैसे– 'राधा का मुख चन्द्रमा–सा है।'

इस उद्धरण में साधारण धर्म (सुन्दर) लुप्त है, अतः यहाँ साधारण धर्म लुप्तोपमा अलंकार है। मालोपमा में उपमानों की एक माला–सी बन जाती है, जैसे– राधा का मुँह कमल जैसा सुन्दर, चन्द्रमा जैसा चमकीला तथा मक्खन जैसा मृदुल है। मुख के लिये यहाँ कई उपमानों का प्रयोग किये जाने के कारण मालोपमा अलंकार है।

2. उत्प्रेक्षा अलंकार– जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना व्यक्त की जाये अर्थात् एक वस्तु को दूसरी वस्तु मान लिया जावे। दोनों वस्तुओं में कोई समान धर्म होने के कारण

सम्भावना प्रायः मनहुँ, मानो, मनो, मनु, जानो, जनु सा आदि शब्दों द्वारा व्यक्त की जाती है। जैसे–

'सोहत ओढ़ पीत पट स्याम सलोने गात।
मनहुं नील मणि सैल पर आतप परयौ प्रभात।'

उपर्युक्त दोहे में सांवले रंग के श्रीकृष्ण द्वारा ओढ़े गये पीले कपड़े (एक वस्तु) के सम्बन्ध में यह सम्भावना व्यक्त की गई है, मानो नीलमणि के पर्वत पर प्रभातकालीन पीली धूप पड़ रही है। यहाँ वस्तु की सम्भावना किये जाने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

3. रूपक अलंकार– जहाँ उपमेय पर उपमान का अभेद रूप में आरोप किया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है, जैसे– *'चरण कमल बन्दौं हरि राई।'*

अर्थात् मै विष्णु (श्रीकृष्ण) के चरण–रूपी कमलों की वन्दना करता हूँ। इस उद्धरण में श्रीकृष्ण के चरणों पर कमल का अभेद–रूप में आरोप किये जाने के कारण रूपक अलंकार है।

4. संदेह अलंकार– जहाँ रूप, रंग आदि के सादृश्य के कारण उपमेय में उपमान की शंका हो जाये, वहां संदेह अलंकार होता है। जैसे– *'कहहिं सप्रेम एक–एक पाहीं।*
राम लखन सखि होहिं कि नाहीं।

प्रस्तुत उद्धरण में ग्रामीण स्त्रियाँ राम और लक्ष्मण को जैसी आकृति वाले भरत और शत्रुध्न को देखकर यह शंका व्यक्त करते चित्रित की गई है कि सखियों को ज्ञात नहीं कि ये राम–लक्ष्मण हैं अथवा नहीं हैं। क्योंकि इसमें स्त्रियों को संदेह व्यक्त करते दिखाया गया है अतः यहाँ संदेह अलंकार है।

5. भ्रांतिमान अलंकार– जहां समानता के कारण निश्चय रूप से एक वस्तु को दूसरी मान लिया जाये, वहां भ्रान्तिमान अलंकार होता है। जैसे–

पाँय महावर देन को नाइन बैठी आय।
फिर–फिर जानि महावरी एडी मीड़ति जाय॥

अर्थात्– नायिका की एड़ियां स्वाभाविक रूप से अधिक लाल हैं, लेकिन नाइन को महावरी लगे होने का भ्रम होता है। अतः वह नायिका की एड़ियों को बार–बार रगड़ना शुरू कर देती है।

प्रश्न–5. काव्य गुण किसे कहते हैं? काव्य के कितने गुण होते हैं?

अथवा

काव्य गुण किसे कहते हैं? ये कितने प्रकार के होते हैं?

अथवा

माधुर्य, प्रसाद एवं ओज गुणों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर– काव्य–गुण– गुण काव्य के प्रभाव को बढ़ाते हैं। जिस प्रकार शौर्य आदि आत्मा के धर्म हैं, शरीर के नहीं, उसी प्रकार काव्य-गुण रस में अवस्थित रहते हैं, वर्णों में नहीं। आचार्य आनन्द वर्धन तथा आचार्य अभिनव गुप्त ने गुणों को रस से अपृथक् सिद्ध रूप में ही माना है।

गुण रस के सहायक धर्म हैं जिस प्रकार शौर्य आदि आत्मा के धर्म हैं, उसी प्रकार गुण रस के धर्म हैं। गुण काव्य की सरस शब्दावली तथा पदावली में स्थित होकर काव्य की श्रीवृद्धि किया करते हैं।

गुण का सामान्य अर्थ श्रेष्ठता, विशेषता, अच्छाई आदि हैं परन्तु काव्य में आचार्य ने गुणों की परिभाषा अनेक प्रकार से दी है। कुछ प्रमुख आचार्यों की गुण सम्बन्धी परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं–

आचार्य वामन के अनुसार, इन्होंने काव्य की शोभा के विधायक धर्म को गुण माना है।

आचार्य आनन्द वर्धन के अनुसार, इन्होंने रस के आश्रित तत्वों को गुण के रूप में परिभाषित किया है।

आचार्य मम्मट ने पहली बार गुणों के विषय में स्पष्ट रूप से समझ में आने वाली बात लिखी है– (काव्य गुण)

ये रसस्यांगिनो धर्माः, शौर्यादय इवात्मना।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युः, अचल स्थितयो गुणाः।।

'अर्थात् जिस प्रकार शौरी, शौर्य आदि आत्मा के धर्म होते हैं, उसी प्रकार गुण रस के अंग होते हैं। गुणों की स्थिति नित्य रहती है एवं वे रस के उत्कर्ष का कारण बनते हैं। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार सूर्य आदि आत्मा के गुण होते हैं शरीर के नहीं, उसी प्रकार काव्य गुण उसके धर्म हैं शब्द और अर्थ के नहीं।'

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नगेन्द्र ने गुणों के विषय में अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा है कि मूलतः रस के साथ सम्बन्ध होते हुए भी गुण शब्दार्थ (शब्द और अर्थ) से भिन्न नहीं है उन्हें रस का धर्म तो मानना ही चाहिए परन्तु साथ ही शब्दार्थ (शब्द और अर्थ) के धर्म मानने में कोई आपत्ति नहीं करनी चाहिए।

गुणों की संख्या– गुणों की संख्या के सम्बन्ध में आचार्य एकमत नहीं है। इस पर भरत मुनि से पण्डितराज जगन्नाथ तक में मतभेद हैं। भरत मुनि ने गुणों की संख्या दस मानी है– (1) श्लेष, (2) प्रसाद, (3) समता, (4) समाधि, (5) माधुर्य, (6) ओज, (7) सौकुमार्य, (8) अर्थ–व्यक्ति, (9) उदारता तथा (10) कान्ति।

आचार्य दण्डी ने भी गुणों की संख्या दस ही मानी है। ये दस गुण हैं– (1) श्लेष, (2) प्रसाद, (3) समता, (4) माधुर्य, (5) सौकुमार्य, (6) अर्थ व्यक्ति, (7) उदारता, (8) ओज, (9) कान्ति तथा (10) समाधि।

इसी प्रकार रीतिवादी आचार्य वामन भट्ट ने भी दस गुण माने हैं–

(1) ओज, (2) प्रसाद, (3) श्लेष, (4) समता, (5) समाधि, (6) माधुर्य, (7) सौकुमार्य, (8) उदारता, (9) अर्थ व्यक्ति तथा (10) कान्ति।

आचार्य मम्मट ने उपर्युक्त दस गुणों का अन्तर्भाव माधुर्य, ओज तथा प्रसाद में किया है तथा कहा है कि गुण केवल तीन ही होते हैं–

'माधुर्योजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते–न–पुनर्दश।'–काव्यप्रकाश

(1) माधुर्य गुण– माधुर्य शब्द का अर्थ है– मुधरता। जिस युग के कारण रचना में मधुरता उत्पन्न होती है उनको माधुर्य गुण कहते हैं। माधुर्य गुण वाली रचना के पठन–श्रवण

से पाठक तथा श्रोता का मन द्रवित हो उठता है। आल्हाद माधुर्य गुण का प्रमुख भाव है। माधुर्य गुण में समास रहित, मधुर तथा कोमल शब्दावली का प्रयोग होता है। इसमें कोमल वर्ण, क वर्ग, च वर्ग, प वर्ग, त वर्ग तथा य, ल, व का प्रयोग अधिक होता है। ट वर्ग तथा लम्बे सामासिक पदों का प्रयोग नहीं किया जाता। माधुर्य गुण वैदर्भी रीति से सम्बन्धित है। यह विदर्भ देश के कवियों की रीति है। दण्डी ने इसको सभी गुणों के लिए उपयुक्त माना है। यह उपनागरिका वृत्ति से सम्बन्धित है।

(2) प्रसाद गुण– प्रसाद शब्द का अर्थ है– प्रसन्नता, किन्तु प्रसाद गुण का होना वहाँ माना जाता है, जहाँ स्वयं में सुबोधता हो तथा उसका अर्थ सुनते ही समझ में आ जाय। दण्डी के मतानुसार जिस रचना का अर्थ सुनने ही सुनने वाले की समझ में आ जाय, वहाँ प्रसाद गुण होता है।

(3) ओज गुण– 'ओज' शब्द का अर्थ तेज, दीप्ति, उत्तेजना आदि होता है। जिस रचना के पढ़ने अथवा सुनने से पाठक अथवा श्रोता के मन में आवेग और उत्साह पैदा हो, उसमें ओज गुण का होना माना जाता है। इसमें द्वित्व, संयुक्त तथा परुष वर्गों, रेफ, लम्बे समस्त पदों आदि का प्रयोग होता है। इसमें मूर्धन्य ध्वनियों का प्रयोग होता है। इसका सम्बन्ध गौड़ी रीति तथा परुष वृत्ति से है। इस रीति में ओज गुण, अलंकारों तथा समासों की प्रधानता रहती है। 'ढ' तथा 'ण' का प्रयोग अधिक होता है। वीर, रौद्र, वीभत्स तथा भयानक रसों में ओज गुण रहता है।

ओज गुण के बारे में विभिन्न आचार्यों के भिन्न–भिन्न विचार हैं। भरत मुनि समस्त गंभीर अर्थ पूर्ण श्रवण–सुखद पदावली के ओज गुण को उपयुक्त मानते हैं। दण्डी समस्त पदावली की बहुलता को ओज गुण के लिए जरूरी मानते हैं। वामन के मतानुसार संयुक्ताक्षरों और संश्लेषण पदों के वीर रस की अपेक्षा वीभत्स रस में तथा वीभत्स रस की अपेक्षा रौद्र रस में ओज गुण अधिक उद्दीप्त होता है। आचार्य विश्वनाथ कठोर वर्गों और संयुक्ताओं के प्रयोग को ओज गुण के लिए आवश्यक मानते हैं।

प्रश्न–6. छन्द के भेद पर प्रकाश डालते हुये प्रमुख छन्दों को उदाहरण सहित समझाकर लिखिये।

अथवा

छन्द को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है? प्रमुख छन्दों की परिभाषा उदाहरण सहित समझाइये।

अथवा

दोहा और सोरठा छंद के चरण और उनमें प्रयुक्त मात्राओं का उदाहरण सहित उल्लेख कीजिये।

अथवा

सोरठा और चौपाई छंद को उदाहरण देकर समझाइये।

अथवा

निम्नलिखित मात्रिक छंदों का परिचय सोदाहरण दीजिये–

दोहा, सोरठा, चौपाई, कवित्त और सवैया।

उत्तर– छन्द वह सांचा है, जिसके अनुसार कविता की रचना की जाती है अर्थात् छन्द वह पैमाना है, जिसके द्वारा कविता की पंक्तियों की मात्रा या वर्ण क्रम एवं संख्या का निर्धारण होता है। वर्ण और मात्रा की गणना के आधार पर छन्द दो प्रकार के होते हैं–

1. मात्रिक छन्द और 2. वर्णिक छन्द।

1. **मात्रिक छन्द–** जिन छन्दों में मात्राओं की एक निश्चित संख्या होती है उन्हें मात्रिक छन्द कहते हैं। जैसे– चौपाई, रोला, सोरठा आदि।
2. **वर्णिक छन्द–** जिन छन्दों में वर्णों की संख्या निश्चित होती है, उन्हें वर्णिक छन्द कहते हैं, जैसे– इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि।

ज्ञातव्य तथ्य– छन्दों के विषय में ज्ञातव्य तथ्य इस प्रकार से हैं–

1. **पाद या चरण–** प्रत्येक छन्द में सामान्यतः चार पाद अथवा चरण होते है जबकि कवित्त आदि कतिपय छन्दों में छह चरण अथवा पाद भी होते हैं। लिखने की सुविधा की दृष्टि से दोहा और सोरठा आदि छन्द यद्यपि दो पंक्तियों में लिखे जाते हैं, किन्तु उनके भी चार चरण होते हैं। इनमें से पहले और तीसरे चरण को विषम तथा दूसरे और चौथे चरण को सम कहते हैं।

वर्ण, मात्रा और लघु–गुरू विचार

1. **वर्ण या अक्षर–** वर्ण या अक्षर उस छोटी–से–छोटी ध्वनि को कहते हैं जिसके खण्ड न हो सकें। लिखित भाषा में अक्षर ही वर्ण कहलाते हैं। अक्षर दो प्रकार के होते हैं– स्वर और व्यंजन। छन्द–शास्त्र में व्यंजन की नहीं अपितु मात्र स्वरों की ही गणना की जाती है। उदाहरणार्थ 'ओम्' में दो अक्षर दिखाई देते हैं किन्तु 'म्' व्यंजन होने के कारण नहीं गिना जायेगा और इस प्रकार 'ओम्' शब्द में एक वर्ण माना जायेगा।

2. **मात्रा–** किसी अक्षर के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे मात्रा कहते हैं। जिन अक्षरों की एक मात्रा होती है, छन्द–शास्त्र में उन्हें लघु कहते हैं। इसका चिह्न विराम जैसी खड़ी लकीर (।) होता है। जिन अक्षरों के उच्चारण में दुगुना समय लगता है, उन्हें गुरू कहते हैं। ऐसे अक्षरों की दो मात्रायें मानी जाती हैं उनका चिह्न अंग्रेजी की 'एस' जैसा (S) होता है।

उदाहरण के लिये जल शब्द में दो अक्षर होते हुये भी तीन मात्रायें (S।) मानी जाती हैं, जबकि जाला शब्द में चार (SS) मात्रायें होती हैं।

(क) लघु वर्ण सम्बन्धी नियम

1. संयुक्ताक्षर लघुवर्ण होते हैं, जैसे स्वास्थ्य, स्नान आदि।
2. चन्द्र बिन्दु से युक्त वर्ण लघु माना जाता है, जैसे– हँस, चँद, फँस आदि।
3. ह्रस्व रूप में उच्चरित गुरू वर्ण भी लघु होता है, जैसे– जोहि, ओहि आदि।
4. ह्रस्व मात्राओं वाले वर्ण लघु होते हैं, जैसे– चिर, फिर, मिल आदि।
5. हलन्त व्यंजन लघु होता है, जैसे– स्वयम्, विद्वान् आदि।
6. पदान्त का वर्ण आवश्यकतानुसार लघु मान लिया जाता है।
7. उच्चारण के अनुसार कभी–कभी संयुक्ताक्षर लघु–गुरू मान लिये जाते हैं।
8. सभी ह्रस्व वर्ण लघु होते हैं।

(ख) गुरू वर्ण सम्बन्धी नियम

1. सभी दीर्घ स्वर गुरू होते हैं।
2. संयुक्ताक्षर से पूर्व के वर्ण गुरू होते हैं, जैसे– सत्य, कर्म आदि।
3. अनुस्वार युक्त वर्ण गुरू वर्ण होते हैं, जैसे– मंद, चंद, छन्द आदि।
4. विसर्ग युक्त वर्ण गुरू वर्ण होते हैं, जैसे– प्रायः, निःसंतान आदि।
5. चरण के अन्त का वर्ण आवश्यकतानुसार गुरू मान लिया जाना चाहिये।
6. हलन्त व्यंजन से पूर्व का वर्ण गुरू होता है, जैसे– स्वयम् राजन् आदि।

(ग) गण–सम्बन्धी विचार– गण छन्द–शास्त्र का एक महत्वपूर्ण अंग है।

वैसे तो वर्ण गणों की तरह मात्रा गण भी होते है किन्तु छन्द विचार में वर्ण–गणों पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। वर्ण गण आठ माने गये हैं जिनके नाम तथा स्वरूप को समझने में यह सूत्र बड़ा उपयोगी है।

'यमाताराजभानसलगम्'

इस सूत्र के आरम्भ से लेकर तीन–तीन वर्णों के आधार पर विभिन्न गणों के स्वरूप का ज्ञान होता है, जबकि इस सूत्र के प्रथम आठ अक्षर क्रमशः गणों के नाम के सूचक वर्ण हैं। ऐसी दशा में इस सूत्र के आधार पर निम्नांकित आठ गण और उनका स्वरूप इस प्रकार ज्ञात होता है–

1. यमाता (यगण)	।SS	लघु–गुरू–गुरू
2. मातारा (मगण)	SSS	गुरू–गुरू–गुरू
3. ताराज (तगण)	SS।	गुरू–गुरू–लघु
4. राजभा (रगण)	S।S	गुरू–लघु–गुरू
5. जभान (जगण)	।S।	लघु–गुरू–लघु
6. भानस (भगण)	S।।	गुरू–लघु–लघु
7. नसल (नगण)	।।।	लघु–लघु–लघु
8. सलगा (गम्) (सगण)	।।S	लघु–लघु–गुरू।

प्रमुख छन्द

(1) दोहा

लक्षण– इसके प्रथम और तृतीय चरण में 13 तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में 11 मात्रायें होती हैं। अन्त में लघु वर्ण होना आवश्यक है।

उदाहरण– *'एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।*
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।'

S।S।।S।।।S।।।SS। = 13 + 11 = 24 मात्रायें।

(2) सोरठा

लक्षण– सोरठा दोहा का उल्टा होता है। इसके प्रथम और तृतीय चरण में 11 तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में 13 मात्रायें होती हैं।

S।।S।S।S।।।।।S।।। = 11 + 13 = 24 मात्रायें।

उदाहरण– *संकर चाप जहाज, सागर रघुवर बाहुबल।*

बूढ़ सो सकल समाज, चढ़ा जो प्रथमहि मोहबस।।

(3) चौपाई

लक्षण– प्रत्येक चरण में 16 मात्रायें होती हैं। अन्त में दो गुरू होना चाहिये, दो चरण होते हैं।

।।। ।ऽ।। ऽ।। ऽऽ = 8 + 8 = 16 मात्रायें।

उदाहरण– *सकल पदारथ है जग माहीं।*
करम हीन नर पावत नाहीं।।

(4) कवित्त

यह समवृत्त (जिसके चरणों में वर्णों की समान संख्या हो) वर्णिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं तथा 16–15 अथवा 8–8–8–7 वर्णों पर यति होती है। इसका अन्तिम वर्ण गुरू होता है। इसे मनहरण देवघनाक्षरी भी कहते हैं। उदाहरण–

8 + 8 = 16 वर्ण
पात भरी सहरी, सकल सुत बारे–बारे।
8 + 7 = 15 वर्ण
केवट की जाति, कछू बेद ना पढ़ाई हौ॥
मेरो परिवार सब याही लागि राजा जू हौं।
दीन बित्त हीन, कैसे दूसरी गढ़ाई हौ॥

(5) सवैया

यह भी एक समवृत्त वर्णिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 22 से लेकर 27 तक वर्ण होते हैं, जिससे इसके कई भेद हैं। इसका एक मत्तगयंद सवैये का है जिसके प्रत्येक चरण में (ऽ।।) 7 भगण और अंत में दो गुरू वर्ण होते हैं, जैसे–

ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।ऽ.।।ऽ।।= 7 भगण तथा 23 वर्ण
या लकुटि अरु कामरिया पर राज तिहुं पुर को तजि डारौं।
× × ×
कोटिन वे कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं।

इस उद्धरण के प्रत्येक चरण में सात भगण हैं तथा अंत में दो गुरू वर्ण हैं, अतः यह मत्तगयंद सवैया का उदाहरण है।

इकाई-3

लघु एवं दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. भाषा से आप क्या समझते हैं ?

उत्तर– 'भाषा' शब्द 'भाष्' धातु से निष्पन्न हुआ है। 'भाष्' धातु का अर्थ होता है– बोलना। व्यक्ति अपने तथा दूसरों के विचारों को जानने के लिये बहुत उत्सुक रहता है। आदिम मनुष्य के पास जब व्यक्त ध्वनियों की सम्पत्ति नहीं थी तब वह हाथ, पाँव, आँख, सिर आदि के संकेतों से अपने भावों व विचारों को स्पष्ट करता था।

भाषा विज्ञानवेत्ता **डॉ. भोलानाथ तिवारी** के अनुसार–'' भाषा अपने व्यापकतम रूप में वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा विचारों और भावों को अभिव्यक्त करते हैं।''

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार– ''भाषा समाज से अर्जित की जाने वाली परिवर्तनशील और क्लिष्टता की ओर बढ़ने वाली सामाजिक वस्तु है।''

अतः भाषा के माध्यम से मनुष्य अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करता है। भाषा मानव व्यवहार का एक महत्वपूर्ण अंग है। वस्तुतः मनुष्य के सामाजिक व्यक्तित्व के विकास का मुख्य आधार भाषा है।

प्रश्न–2. जनपदीय भाषा या बोली किसे कहते हैं?

उत्तर– भाषाओं को भौगोलिक सीमाओं में बाँधकर बोलियों की संज्ञा दी जाती है, जिसमें उसके ऐतिहासिक, साहित्यिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक इकाई के दर्शन होते हैं। लम्बे–चौड़े क्षेत्र विशेष में बोली जाने वाली प्रत्येक भाषा पर आंचलिक प्रभाव के कारण शब्दों में परिवर्तन आने लगता है। आंचलिक समाज की चेतना और संस्कृति मूल भाषा को प्रभावित करती है। अतः भाषा में हल्का बदलाव स्पष्ट झलकने लगता है। इसी बदली हुई स्थिति में भाषा को जनपदीय भाषा या बोली कहा जाता है। जनपदीय भाषा या बोली जनपद की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का माध्यम होती है। लोक संस्कृति की गतिशीलता उसमें स्वाभाविक रूप में परिवर्तन करती है। अतः लोक भाषा या बोली अभिव्यक्ति का सहज और सशक्त माध्यम है।

प्रश्न–3. 'पुराने साहित्य की समर्थ काव्य–सम्पदा लोक भाषा की देन है।' स्पष्ट कीजिये।

अथवा

पुराना साहित्य एवं काव्य अधिकांशतः लोक भाषा में ही लिखा गया है। विवेचना कीजिये।

अथवा

'लोक भाषा प्राचीन समर्थ साहित्य का सशक्त माध्यम है।' स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– लोक भाषा या बोली जनपद की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का माध्यम होती है। लोक भाषा या जनपदीय भाषा अभिव्यक्ति का सहज एवं सशक्त माध्यम होती है। अतः हमारे पुराने साहित्य का काव्य भण्डार लोकभाषा के माध्यम से ही जगत् के सामने प्रस्तुत हुआ है। विगत् सदियों की हमारी काव्य सम्पदा इसका स्पष्ट प्रमाण है। आधुनिकता की दौड़ में भागा जा रहा हमारा आज का जीवन लोक मानस की उस जातीय परम्परा से अलग नहीं हो पा रहा है क्योंकि लोक मानस के इतिहास की जीवन्तता अपनी परम्परा से सम्बद्ध रहने के लिये हमें प्रेरित करती है। हमारी लोक भाषाओं का शब्द सामर्थ्य और उसके सगुण स्वास्थ्य का अनुवर्तन यदि आधुनिक जीवन के विविध रूपों के चित्रण में होता है तो आज भी वह जन–जीवन को आनन्द और चेतनात्मक अभिव्यक्ति के सबल स्वर प्रदान करने में सफलता अर्जित कर सकता है। परिनिष्ठित या नगर भाषा की अपेक्षा ग्राम भाषा अथवा 'आम आदमी की भाषा' में अभिव्यक्ति की शक्ति कहीं अधिक प्रभावशाली होती है। इस दृष्टि से लोकभाषा के माध्यम से सृजन संसार में सक्रिय रचनाकारों का योगदान नगर–भाषा के रचनाकारों से कदापि कम महत्व का नहीं है।

प्रश्न–4. जनपदीय भाषा अथवा लोकभाषा की प्रमुख विशेषतायें बताइये।

अथवा

बुन्देली भाषा की प्रमुख विशेषतायें बताइये।

उत्तर– सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति का मूल आधार जनपदीय भाषा है। नगरीय भाषा की अपेक्षा बुन्देली जनपदीय भाषा कृत्रिमता रहित, अपनत्व से परिपूर्ण, लालित्यमयी, सरल एवं सुबोध बुन्देली भाषा बुन्देलखण्ड की विरासत है। बुन्देली में सरस प्रवाह है, जीवन की आद्योपान्त विश्लेषण–क्षमता है। रीति–रिवाज, तीज–त्यौहार, मड़ई–मेला, पूजा–पाठ, हवन–अनुष्ठान आदि इसके आयाम हैं। बुन्देली या जनपदीय भाषा में प्रकृति सी कोमलता और नम्रता, गंगा सी पवित्रता, वीणा सी मधुरता, धरती माँ के समान सहिष्णु, रत्नाकर सी गम्भीर, हिमालय सी उच्च और गगन सी विशाल है। बुन्देली का सौन्दर्य इन सौम्य गुणों के कारण अनुपम और अतुलनीय है।

बुन्देली अभिजात्य की भाषा नहीं है। वह पाण्डित्य की चेतना और अहंकार से शून्य है। वह परम्परा के प्रवाह में जीवित रहने वाली लोक भाषा है। आडम्बर रहित, कृत्रिमता से दूर स्वाभाविक अभिव्यक्ति, भावुक उद्‌गार लिये, हृदय को छूने वाली आत्मीयता से ओत–प्रोत है। 'बुन्देली' सभ्यता के दूषित प्रभाव से मुक्त ग्राम्य, वन–प्रांतर की सरस भाषा है।

बुन्देली ग्रामांचलों के लोक मानस को सहजता से प्रकट करने वाली भाषा है। बुन्देली लोक साहित्य में स्वानुभूति, लौकिक अनुभूति बनकर प्रस्फुटित हुई है, जिसमें लोक–संस्कृति उमग–उमग पड़ती है। ग्राम्य–जीवन का यथार्थ काव्य–रचनाओं में परिलक्षित होता है। पछुआ बयार, रिमझिम फुहार, खपरैल से उठता धुआँ, चक्की के गीत, पनघट की बातें, नदिया–कछार की पहर, माटी की सोंधी गंध, बीज बोता किसान, गोधूलि बेला, रंभाती हुई गायें, जंगल की मोर, करमा और ददरिया, तीज–त्यौहार, मड़ई–मेले, ऋतु–उत्सव, विरहा के गीत, सोहर–बधाव, विवाह गीत निश्छल–सहजता, सरलता और आत्मीयता से हमारा मन मोह लेते हैं।

बेर–करोंदा, चाकर–पीपर, धाय–धुवैन, चार–चिरोंजी, मकुई, झरबेरी, आमा–जामुन, विही से आत्म–विस्मृत कर देने वाले राग बुन्देली लोक गीतों में हैं। टिकली, फुंदरी, पैजन, करधन, बहुंटा, चुरबा, बिछुआ, बाजूबन्द जैसे जेवरों की मीठी आवाज बुन्देली लोकगीतों में गूँजती है। बड़की, छुटकी, चहुरिया, दिद्दा, दिदिया, बप्पा, बब्बा, नाती–नतुरा, धनियां के सम्बन्ध बुन्देली गीतों में जीवन्त हैं। बुन्देली लोकोक्तियां, कहावतें, सैर, दोहा, सवैया और छन्द गागर में सागर समाये हुये हैं। अतः हम कह सकते हैं कि बुन्देली लोक–साहित्य लोक विज्ञान एवं लोक मानस की सहज अभिव्यक्ति करने में पूर्ण रूप से सक्षम है।

प्रश्न–5. बुंदेलखण्ड नामकरण के पक्ष में अपने विचार स्पष्ट कीजिये।

अथवा

भारत के एक विस्तृत क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के नाम से जाना जाता है, क्यों? स्पष्ट कीजिये।

अथवा

बुन्देलखण्ड के नामकरण पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिये।

अथवा

बुन्देली भाषा के नामकरण पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– बुन्देलखण्ड भू–भाग प्रागैतिहासिक काल में भी अपने अस्तित्व में था और आज भी है। यह वह भू–भाग है जो प्रमुख रूप से बुन्देले राजपूतों की निवास–भूमि अथवा उनके द्वारा शासित क्षेत्र रहा है। 'बुन्देला' शब्द सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, अग्निवंशी, चेदि चौहान, गहरवार आदि वर्ग विशेष के क्षत्रियों का द्योतक नहीं है। बुन्देलखण्ड में बसने के कारण वहाँ का क्षत्रिय वर्ग विशेष बुन्देला नहीं कहलाया, इसके विपरीत बुन्देलों की निवास भूमि होने के कारण यह भू–भाग बुन्देलखण्ड कहलाया।

बुन्देलखण्ड नामकरण के सम्बन्ध में अनेक मान्यतायें हैं। प्रथम मान्यता के अनुसार विंध्याचल पर्वत श्रेणियों की उपत्यकाओं में स्थित होने के कारण यह भूभाग बुन्देलखण्ड, कहलाता है। इस भूभाग का नाम 'बुन्देलखण्ड' मानने वाले 'विन्ध्य' से 'विनध्य' का विन्यास का विकास एवं 'विन्ध्य' से 'विन्ध्येल' शब्द का निर्माण मानकर कालान्तर में बुन्देलखण्ड का नाम मानते हैं।

द्वितीय मान्यता के अनुसार बुन्देले इस भूभाग के मूल निवासी नहीं हैं। यहाँ आकर बसने के पश्चात् ही वे बुन्देले कहलाये। कहा जाता है कि गहरवार क्षत्रिय महाराज हेमकरण, काशी का राज्य छिन जाने के कारण इस भूभाग में आकर बस गये। यहाँ रहकर दोबारा अपना राज्य स्थापित करने की कामना लेकर उन्होंने विन्ध्यवासिनी देवी की आराधना की। अपनी आराधना सम्पन्न करने हेतु जैसे ही देवी को अपना सिर समर्पित करने के लिये अपनी तलवार उठाई, तो देवी ने उनका हाथ पकड़ लिया, किन्तु उनके मस्तक पर हल्की खरोंच लग ही गई और रक्त की कुछ बूंदें देवी के सामने भूमि पर गिर पड़ीं। इन्हीं हेमकरण महाराज की सन्तान बुन्देले कहलाई तथा इनका निवास–स्थान बुन्देलखण्ड कहलाने लगा।

सम्भवतः विन्ध्य से विन्ध्येन शब्द की निष्पत्ति हुई और कालान्तर में विन्ध्येले से बुन्देले शब्द बना। इन्हीं बुन्देलों का शासन स्थापित हो जाने के कारण इस भू–भाग को बुन्देलखण्ड कहा जाने लगा।

महाराज हेमकरण की 10वीं पीढ़ी में 16वीं सदी के लगभग मध्यकाल में, महाराज रुद्रप्रताप हुये, जिन्होंने सर्वप्रथम चन्देलों के अधिकार से इस भूखण्ड का कुछ भाग छीनकर अपना राज्य स्थापित किया। इतिहासकारों ने इनके शासन का आरम्भ सन् 1553 ई. (सं. 1610 वि.) माना है। इस तरह महाराज रुद्रप्रताप ही बुन्देल राज्य के प्रथम शासक थे। इसके पश्चात् उनके पुत्र महाराज भारतीचन्द्र ने अपने राज्य का विस्तार उत्तर में यमुना नदी के किनारे तक तथा दक्षिण में कालिंजर और महोबा तक किया। महाराज छत्रसाल बुन्देला इसी राजवंश के उत्तराधिकारी हुये। बुन्देलखण्ड का नाम चार सौ वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं हो सकता।

यह क्षेत्र हमेशा से अशांति और राजनीतिक हलचल का रहा है। इस भू–भाग में राजनीतिक उत्थान–पतन होते रहे हैं। राजनीतिक परिवर्तन के कारण इस क्षेत्र की सीमाओं में भी परिवर्तन होता रहा। यह कभी विशाल साम्राज्य का अंग बनकर आर्यों द्वारा शासित होता रहा, कभी नागों द्वारा, कभी चेदियों द्वारा, कभी गुप्त वंश द्वारा, कभी चन्देलों द्वारा, कभी प्रतिहारों द्वारा, कभी बुन्देलों द्वारा तथा कभी विभिन्न मुस्लिम शासकों द्वारा शासित होता रहा। अतः प्रत्येक शासन काल में इसकी सीमायें भी बदलती रहीं।

'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका' में बुन्देलखण्ड का 'जेजाक भुक्ति' के रूप में उल्लेख मिलता है। इतिहासकारों ने राजा जेज्जाक (जय शक्ति) को प्रतापशाली शासक कहकर उसका राज्य यमुना से नर्मदा तक विस्तृत बतलाया है। इसी राजा के नाम पर यह यमुना से नर्मदा तक का भाग 'जीजक' अथवा 'जेजक भूमि' कहलाता था।

स्व. श्रीकृष्ण बल्देव वर्मा के अनुसार– 'वैदिककालीन यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड का यहाँ सर्वप्रथम अभ्युदय होने के कारण यह प्रदेश 'यजुर्होति' कहा गया था। पृथ्वीराज चौहान के मदनपुर के शिलालेख से प्रकट होता है कि 12वीं शताब्दी तक यह देश जेजाक भुक्ति ही कहलाता था।'

महाभारतकालीन चेदि नरेश शिशुपाल भी वर्तमान बुन्देलखण्ड के अधिकांश भाग का शासक था। उसकी राजधानी चन्देरी थी। इतिहासकार **श्री डी. महाजन** ने 'शिशुपाल द्वारा शासित भूभाग को वर्तमान बुन्देलखण्ड के समरूप लिखा भी है।' वे चेदिवंशीय राजाओं का शासनकाल ई.पू. 6वीं से चौथी सदी मानते हैं। उन्होंने लिखा है– 'जेजक भुक्ति बुन्देलखण्ड का प्राचीन नाम था। यह कन्नौज के प्रतिहार साम्राज्य का अंग था।'

बुन्देलखण्ड का नाम 'दशार्ण देश' भी बतलाया जाता है। यह नाम 'जेजक भुक्ति' के पूर्व का होना चाहिये। महाभाष्य के टीकाकार ने नदी तथा देश विशेष का नाम 'दशार्ण' लिखा है। बुन्देलखण्ड दस नदियों का देश है। चम्बल, पहूज, काली सिन्ध और क्वांरी नदियों का संगम यमुना में होता है। इस स्थान को 'पंचनद' भी कहते हैं। शेष पाँच नदियाँ– बेतवा (वेत्रवती), मन्दाकिनी, केन, तमसा और धसान हैं। दशार्ण देश के राजा हिरण्य वर्मा की पुत्री का विवाह राजकुमार शिखण्डी से हुआ था। दशार्ण नरेश सुधर्मा तथा पाण्डुनन्दन का भीम के साथ युद्ध का उल्लेख महाभारत में मिलता है।

इस प्रदेश में बुन्देलखण्ड कहलाने का कारण यहाँ की भौगोलिक स्थिति ही प्रतीत होती है। इस प्रदेश में विन्ध्य पर्वत की श्रेणियाँ हैं अतः विन्ध्य–खण्ड से कालान्तर में बुन्देलखण्ड कहलाने लगा।

प्रश्न–6. बुन्देलखण्ड में बुन्देले राजाओं का शासन कब प्रारम्भ हुआ? इनके प्रथम शासक कौन थे? संक्षेप में बताइये।

उत्तर– महाराज हेमकरण की 10वीं पीढ़ी में 16वीं शती के लगभग मध्यकाल में, महाराज रूद्रप्रताप हुए, जिन्होंने सर्वप्रथम चन्देलों के अधिकार से इस भू–खण्ड का कुछ भाग चन्देलों के अधिकार से छीन कर अपना राज्य स्थापित किया। इतिहासकारों ने इनके शासन का आरम्भ सन् 1553 ई. (सं. 1610 वि.) माना है। इस प्रकार महाराज रूद्रप्रताप ही बुन्देल राज्य के प्रथम शासक थे।

प्रश्न–7. बुन्देली–भाषी क्षेत्र का आलोचनात्मक वर्णन कीजिये।

अथवा

बुन्देली भाषा के क्षेत्र का विवरणात्मक परिचय दीजिये।

अथवा

बुन्देलखण्ड के इतिहास के सन्दर्भ में बुन्देलखण्ड की क्षेत्रीय सीमा पर प्रकाश डालिये।

अथवा

बुन्देली भाषा के क्षेत्रीय–विस्तार की सीमा पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– 'बुन्देली' पश्चिमी हिन्दी की एक महत्वपूर्ण बोली है। बुन्देली लोकभाषा बुन्देलखण्ड में बोली जाती है किन्तु यह सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में प्रचलित नहीं है। **डॉ. ग्रियर्सन** के अनुसार, एक तो यह उपर्युक्त क्षेत्र के बाँदा जिले की बोली नहीं है। दूसरे, चम्बल नदी ग्वालियर राज्य की उत्तरी और पश्चिमी सीमा का निर्माण करती है किन्तु बुन्देली उत्तर में चम्बल तक ही सीमित नहीं है, यह इस नदी के पार आगरा, मैनपुरी और इटावा जिले के दक्षिणी भाग में भी बोली जाती है। पश्चिम में यह चम्बल तक भी बोली जाती है। ग्वालियर राज्य के पश्चिमी भाग में ब्रज और राजस्थान की कुछ बोलियों से मिश्रित बुन्देली बोली जाती है। इसी प्रकार दक्षिण में यह नर्मदा को पार कर आगे बढ़ गई है। यह नर्मदा के पार होशंगाबाद और नरसिंहपुर जिले में ही नहीं सिवनी जिले में भी बोली जाती है। यह बालाघाट के लोधियों द्वारा भी बोली जाती है। इस प्रकार यह 67 हजार पांच सौ वर्गमील में बसे लोगों द्वारा बोली जाने वाली लोक भाषा है।

'इण्डिया गजेटियर' के अनुसार 'बुन्देलखण्ड की सीमा उत्तर में यमुना नदी, उत्तर तथा पश्चिम में चम्बल नदी, दक्षिण में मध्यप्रदेश के जबलपुर, सागर जिले तथा दक्षिण पूरब में रीवा अथवा बुन्देलखण्ड एवं मिर्जापुर के पर्वत हैं।'

डॉ. **उदय नारायण तिवारी** के अनुसार– 'बाँदा इस सीमा के अंतर्गत है, किन्तु यहाँ की बोली बुन्देली नहीं अपितु पूर्वी हिन्दी की बघेली है। इसके अतिरिक्त झाँसी कमिश्नरी के अन्य जिले झाँसी, जालौन तथा हमीरपुर बुन्देली भाषी हैं।'

डॉ. **भोलानाथ तिवारी** के अनुसार– 'बुन्देली शुद्ध रूप में झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा (टीकमगढ़), सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा नागपुर में प्रचलित हैं।' डॉ. **हरदेव बाहरी** ने बुन्देली का क्षेत्र इस प्रकार वर्णित किया है–

'यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अंचल।
पूर्व ओर है टोंस पश्चिमांचल में चम्बल॥'

किन्तु वर्तमान समय में यह क्षेत्र इससे कुछ अधिक बड़ा है। इसके अंतर्गत उत्तरप्रदेश में बाँदा का पश्चिमी भाग, उरई, हमीरपुर, जालौन और झाँसी के पूरे–पूरे जिले एवं मध्यप्रदेश में ग्वालियर का पूर्वी भाग, भोपाल का थोड़ा–सा हिस्सा, ओरछा, पन्ना, दतिया, सागर, टीकमगढ़, नरसिंहपुर, सिवनी, छिंदवाड़ा, होशंगाबाद और बालाघाट के जिले आते हैं।

डॉ. **धीरेन्द्र वर्मा** शुद्ध बुन्देली भाषा के क्षेत्र के अंतर्गत झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद और मिश्रित बुन्देली का क्षेत्र दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिन्दवाड़ा का कुछ भाग मानते हैं।

डॉ. **एम.पी. जायसवाल** ने शुद्ध बुन्देली के क्षेत्र बुन्देली भाषी जिले टीकमगढ़, सागर, झाँसी, जालौन जिले का अधिकांश भाग, हमीरपुर, गुना जिले के चन्देरी एवं मुंगावली, भोपाल, विदिशा जिले का आधा पश्चिमी भाग एवं दतिया की सीमा के भाग बतलाये हैं। उनके शेष बुन्देली भाषी जिले छतरपुर, पन्ना, दमोह, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, सिवनी, बालाघाट, छिन्दवाड़ा तथा दुर्ग के कुछ भाग हैं। उन्होंने बाँदा जिले को भी बुन्देली भाषी क्षेत्र के अन्तर्गत स्थान दिया है। इसी प्रकार वे नागपुर, चाँदा, बुलढाना तथा अकोला जिले के भी कुछ

भागों में बुन्देली का प्रयोग स्वीकार करते हैं। डॉ. जायसवाल ने डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार जबलपुर को बुन्देली भाषी क्षेत्र के अंतर्गत नहीं माना है। उनका दुर्ग जिले के कुछ भाग को बुन्देली भाषी कहना वास्तविकता से परे है। यह पूर्ण जिला छत्तीसगढ़ी भाषी है।

डॉ. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल ने बुन्देलखण्ड के अंतर्गत आने वाले जिलों- जालौन, हमीरपुर, झाँसी, बाँदा, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, दमोह, सागर, नरसिंहपुर, भिण्ड, दतिया, ग्वालियर, शिवपुरी, गुना, विदिशा, रायसेन और होशंगाबाद को सम्मिलित करने के पश्चात् उल्लेखित किया कि 'भाषाई व्यापकता की दृष्टि से उक्त सीमा में कुछ परिवर्तन आवश्यक होंगे, जैसे नर्मदा के दक्षिण में स्थित छिन्दवाड़ा, सिवनी तथा बैतूल जिले मराठी मिश्रित होते हुये भी बुन्देली भाषा-भाषी ही ठहरेंगे।' डॉ. अग्रवाल ने जबलपुर को पूर्व ग्रन्थगत मान्यता के कारण बुन्देली भाषी क्षेत्र के अंतर्गत स्थान नहीं दिया है। मालवी भाषी बैतूल जिले को मिश्रित बुन्देली का क्षेत्र मान लिया है। वस्तुतः बैतूल और होशंगाबाद गजेटियर में भी बैतूल की बोली को मालवी भाषा बतलाया गया है। डॉ. अग्रवाल ने भोपाल जिले को बुन्देली भाषी क्षेत्र के अंतर्गत नहीं माना है, जबकि उसके कुछ पश्चिमी भाग के अतिरिक्त पूर्ण जिला बुन्देली भाषी है।

झाँसी, जालौन, हमीरपुर और बाँदा को बुन्देलखण्ड के अंतर्गत माना गया है, उसमें से बाँदा जिला बुन्देली भाषी नहीं है। वहाँ अवधी का एक रूप बोला जाता है। चम्बल नदी ग्वालियर की उत्तरी और पश्चिमी सीमा पर बहती है जिसके साथ बुन्देलखण्ड की सीमा समाप्त हो जाती है किन्तु बुन्देली इस सीमा को बाँधकर मैनपुरी और इटावा जिले के दक्षिणी भाग में बोली जाती है, जबकि आगरा ब्रज भाषा का और मैनपुरी तथा इटावा कन्नौजी के क्षेत्र माने जाते हैं।

दक्षिण में नर्मदा के साथ बुन्देलखण्ड की सीमा समाप्त हो जाती है किन्तु इस सीमा के आगे होशंगाबाद के मध्य तथा पूर्वी भाग और नरसिंहपुर जिले में भी बुन्देली बोली जाती है। जबलपुर जिले को बुन्देलखण्ड के अंतर्गत बतलाया गया है किन्तु पूरे जिले में बुन्देली नहीं बोली जाती है। इस जिले के उत्तरी भाग में स्थित कटनी जिले में बुन्देली और बघेली का एक ऐसा मिश्रित रूप बोला जाता है, जिसमें बघेली के रूप की प्रधानता है।

सीहोर जिले की सीहोर तहसील के पश्चिमी भाग तथा आष्टा तहसील में केवल मालवी मिश्रित बुन्देली बोली जाती है। इस जिले का केवल वही भाग बुन्देली भाषी है जो उत्तर में विदिशा जिले से और दक्षिण में होशंगाबाद जिले से लगा हुआ है। नरसिंहपुर जिले से लगी हुई छिंदवाड़ा जिले की अमरवाड़ा तहसील, मध्य छिन्दवाड़ा तथा सिवनी जिले की लखनादौन तहसील बुन्देली भाषी है।

बुन्देलखण्ड की तरह ही बुन्देली भाषी क्षेत्र को निश्चित सीमा रेखाओं में नहीं बाँधा जा सकता किन्तु निम्नांकित क्षेत्र को बुन्देली भाषी कह सकते हैं-

झाँसी, जालौन और हमीरपुर जिले तथा आगरा, मैनपुरी और इटावा का दक्षिणी भाग, ग्वालियर जिले का अधिकांश भाग भिण्ड, मुरैना, गुना, शिवपुरी, दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, सागर, दमोह और कटनी तहसील के अतिरिक्त जबलपुर जिला, आष्टा और सीहोर तहसील का पश्चिमी भाग छोड़कर शेष सीहोर जिला, भोपाल

विदिशा, रायसेन, होशंगाबाद जिले की होशंगाबाद और सोहागपुर तहसील, नरसिंहपुर, छिंदवाड़ा जिले की अमरवाड़ा और छिदवाड़ा तहसील का पूर्वोत्तर एवं मध्य भाग, सिवनी जिले की लखनादौन तहसील तथा सिवनी तहसील का मध्य पूर्वी भाग।

प्रश्न-8. बुन्देली भाषी क्षेत्र से आप क्या समझते हैं? समझाइये।

उत्तर- बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली भाषा बुन्देली कहलाती है। बुन्देली भाषा बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली लोकभाषा है, परन्तु यह सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में नहीं बोली जाती।

डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार, बुन्देली बांदा जिले की बोली नहीं है दूसरे यह चम्बल नदी तक ही सीमित न रहकर, आगरा, मैनपुरी और इटावा जिले के दक्षिणी भाग में भी बोली जाती है। ग्वालियर राज्य के पश्चिमी भाग में ब्रजभाषा और राजस्थानी बोलियों से मिश्रित बुन्देली बोली जाती है। इसी तरह नर्मदा को पार कर होशंगाबाद और नरसिंहपुर जिले में ही नहीं बल्कि सिवनी जिले में भी बुन्देली बोली जाती है। यह बालाघाट के लोधियों द्वारा भी बोली जाती है। इस प्रकार बुन्देली 67,500 वर्गमील में बसे लोगों द्वारा बोली जाने वाली लोक भाषा है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार-"बुन्देली शुद्ध रूप में झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा(टीकमगढ़), सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगावाद में बोली जाती है।

अन्य इतिहासकार जैसे डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. एम.पी. जायसवाल तथा डॉ. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल बुन्देली भाषा के क्षेत्र के विषय में भिन्न-भिन्न मत को मानते है, सभी एक मत नहीं हैं।

अतः बुन्देलखण्ड की तरह ही बुन्देली भाषी क्षेत्र को निश्चित सीमा रेखाओं में नहीं बाँधा जा सकता। फिर भी निम्नांकित क्षेत्र को बुन्देली भाषी कह सकते हैं-

झासी, जालौन, हमीरपुर, तथा आगरा, मैनपुरी और इटावा का दक्षिणी भाग, ग्वालियर जिले का अधिकांश भाग, भिण्ड, मुरैना, गुना, शिवपुरी, दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, सागर, दमोह और कटनी तहसील के अतिरिक्त जबलपुर जिला, आष्टा और सीहोर तहसील का पश्चिमी भाग छोडकर शेष सीहोर जिला, भोपाल, विदिशा, रायसेन, होशंगावाद व सोहागपुर तहसीलें, नरसिंहपुर, अमरवाड़ा व छिदवाड़ा तहसीलों का पूर्वोत्तर भाग एवं मध्य भाग, सिवनी की लखनादौन व सिवनी तहसीलों का मध्यपूर्वी भाग।

प्रश्न-9. बुन्देली भाषा का उद्भव किस प्रकार हुआ? विस्तार से विवेचन कीजिये।

अथवा

बुन्देली भाषा के उद्भव पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

अथवा

बुन्देली भाषा के उद्भव पर युक्तिसंगत विचार व्यक्त कीजिये।

उत्तर- बुन्देली भाषा के उद्भव के सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों के अलग-अलग मत हैं।

डॉ. होर्नले के अनुसार- 'पंजाबी, राजस्थानी और पूर्वी हिन्दी प्रथम आर्य समुदाय और पश्चिमी हिन्दी द्वितीय आर्य समुदाय की भाषा थी।' डॉ. होर्नले ने लगता है तत्कालीन आर्यों

द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी को ही पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी कह दिया है। ये नामकरण वास्तव में अपभ्रंश काल के उत्तरार्द्ध के हैं। डॉ. ग्रियर्सन ने यह अवश्य स्वीकार किया है कि 'भारत के भाषात्मक इतिहास के प्रारम्भ में ही भारतीय आर्य बोलियाँ दो रूपों में विभाजित हो गई थीं। एक मध्यवर्तीय प्रदेश की बोलियाँ या समूह और दूसरा बाह्य वृत्त की बोलियों का समूह था।' डॉ. ग्रियर्सन ने बोलियों के जिस समूह को मध्यवर्ती प्रदेश में प्रचलित बताया है, उन्हीं में से कोई बोली अथवा बोलियाँ उस काल में वर्तमान बुन्देलखण्ड के भू-भाग में बोली जाती रही होंगी।

डॉ. ग्रियर्सन ने लिखा है कि 'पतंजलि के काल तक उत्तर भारत में अनेक बोलियाँ प्रचलित थीं। ये बोलियाँ वेदों के रचनाकाल में क्रमशः विकसित होती जा रही थीं। संस्कृत का जन्म इन्हीं में से एक बोली का विकास है। इस नवीन भाषा का जन्म ब्राह्मणों के प्रभाव में द्वितीय भाषा के रूप में हुआ था। समय के साथ-साथ यह भाषा मध्य भारत तक फैल गई और इसे मध्यकालीन लैटिन के समान महत्व प्राप्त हो गया। शताब्दियों तक आर्यों की परस्पर व्यवहार की भाषायें 'प्राकृत' कहलाती रहीं, जबकि संस्कृत एक बनाई अप्राकृत भाषा थी। वैदिक काल में ये ही प्राकृत देश के विभिन्न भागों में लोक-भाषाओं के रूप में प्रचलित थी। इन लोक भाषाओं का सम्पादित रूप ही प्रथम प्राकृत कहलाया। इन लोक भाषाओं के रूप में प्रचलित जिन प्राकृतों का संस्कृत के साथ विकास हुआ, इनका व्याकरण बना और इस प्रकार उन्हें साहित्यिक रूप प्राप्त हुआ। प्राकृत का यही रूप द्वितीय प्राकृत कहलाया।'

प्राकृत काल (500 ई.पू. से लगभग 500 ई. तक) में हमें जिन प्राकृतों का नामोल्लेख मिलता है, वह स्थान अथवा क्षेत्रवाची है। उत्तर भारत में प्रचलित प्राकृतों के तीन नाम मिलते हैं- (i) उत्तर पश्चिमी प्राकृत (ii) मध्य प्रदेशीया प्राकृत (iii) प्राच्य।

नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत ने प्राकृतों के सात प्रकार, साहित्य दर्पणकार ने बारह, प्राकृत लंकेश्वर के रचयिता ने सोलह और प्राकृत चन्द्रिकाकार ने सत्ताईस प्रकार बतलाये हैं। ये भेद भौगोलिक आधार पर हैं अतः उस काल में बुन्देलखण्ड कहलाने वाले क्षेत्र में लोक मात्र के रूप में प्रचलित प्राकृत को 'मध्य देशीया प्राकृत' कहा जा सकता है। इसी प्राकृत के मूल में 'बुन्देली' के उद्गम स्रोत हैं।

प्राकृत के प्रथम विकास काल में ही 'पालि' का बुन्देलखण्ड में प्रवेश हो गया था लेकिन प्राचीन वैदिक धर्म के प्रभाव के कारण पालि का विकास रुक गया और पालि के स्थान पर संस्कृत को पुनः साहित्यिक रूप प्राप्त हुआ। ये प्राकृतजन्य बोलियाँ आगे चलकर लोकवाणी का माध्यम बनीं।

गुणाढ्य की पैशाची प्राकृत की रचना बड्ड कथा (वृहत्कथा) विन्ध्य क्षेत्र में ही रचित कही जाती है जो ईसा की प्रथम शताब्दी की रचना है। कुछ विद्वानों की यह भी धारणा है कि इसकी रचना पिशाच देश में की गई थी। यदि प्रथम धारणा के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना विन्ध्य क्षेत्र में हुई, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ईसा की प्रथम शती में विन्ध्य अथवा बुन्देलखण्ड में कोई प्राकृत रचना लोक भाषा के रूप में प्रचलित थी, जिसमें पैशाची प्राकृत की प्रकृति का शौरसेनी से साम्य बतलाया है।

निष्कर्षतः प्राकृत काल में बुन्देलखण्ड की लोक भाषा शौरसेनी के एक रूप 'मध्य देशीया प्राकृत' से उद्भूत हुई है।

प्रश्न-10. भाषा के अपभ्रंश काल से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित उसके विकास एवं विस्तार पर प्रकाश डालिये।

उत्तर- अपभ्रंश लोक प्रचलित बोलियों का ही नाम है। कालान्तर में विकास के साथ यही बोलियाँ (अपभ्रंश) लोक भाषा के रूप में पहचानी जाने लगीं।

सं. 500 से 1000 वि. तक का समय भाषा की दृष्टि से 'अपभ्रंश काल' कहा गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- 'भरतमुनि (तीसरी शती) ने 'अपभ्रंश' का नाम न देकर 'देश भाषा' ही कहा है। वररुचि के 'प्राकृत प्रकाश' में भी अपभ्रंश का उल्लेख नहीं है। अपभ्रंश में हिन्दी में रचना होने का पता हमें विक्रम की सातवीं शताब्दी में मिलता है।'

डॉ. उदय नारायण तिवारी ने सन् 600 ई. (सं. 657 वि.) से अपभ्रंश काल स्वीकार कर इसका विस्तार क्षेत्र राजस्थान, गुजरात, पश्चिमोत्तर भारत, बुन्देलखण्ड, बंगाल, और दक्षिण में वाम्यखेट तक बतलाया है।'

अपभ्रंश भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जो परिनिष्ठित मान्य साहित्यिक भाषा से निम्न कोटि की हो।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लिखा है- 'यह बात स्मरण रखने योग्य है कि यद्यपि प्राकृत में लिखे गये काव्यों के बाद ही अपभ्रंश भाषा के काव्य लिखे गये, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि यद्यपि प्राकृत नाम की कोई भाषा बोली जाती थी और अपभ्रंश नाम की भाषा बाद में बोली जाने लगी। असल में अपभ्रंश लोक प्रचलित भाषा का नाम है, जो नाना काल और नाना स्थान एवं रूप में होती जाती थी और बोली जाती थी पर बाद में चलकर यह लोक भाषा का ही नामान्तर हो गया।'

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने 'हिन्दी काव्य धारा' की भूमिका में अपभ्रंश का विस्तार उत्तर भारत से दक्षिण भारत के हैदराबाद तक बतलाया है- 'जहाँ सरहपा और शबरपा बंगाल बिहार के निवासी थे, वहाँ अब्दुर्रहमान का जन्म मुलतान में हुआ था। स्वयंभू और कनकाधर क्रमशः अवधी और बुन्देली क्षेत्र के थे, तो हेमचन्द्र और सोमप्रभ गुजरात के। इस प्रकार हिमालय से गोदावरी और सिंध से ब्रह्मपुत्र तक के भाग ने इस साहित्य के निर्माण में हाथ बँटाया।'

विक्रम की 17वीं शती से 12वीं शती तक भारत के एक विस्तृत भूभाग में अपभ्रंश में ही साहित्य-सृजन होता रहा। इतने विस्तृत भूभाग में व्याप्त अपभ्रंश का एक ही रूप नहीं हो सकता, वह निश्चित ही अनेक रूपों में प्रचलित रही होगी। विद्वानों ने अपभ्रंश के विविध प्रकार बतलाये हैं। नंदि साधु ने इसके तीन प्रकार- उपनगर, आभीर और ग्राम्य बतलाये हैं। दूसरे वैयाकरण इसे- नागर, उपनगर और ब्राचड में विभाजित करते हैं। मार्कण्डेय के अनुसार इसके- पंचाली, सिंघली, वैदर्भी, लाटी, मध्य देशीया, औड्री, गुर्जरी, कैकेयी, पाश्चात्य, गौड़ड़ आदि अनेक प्रकार थे। इन प्रकारों के अनुसार 'मध्य देशीया' बुन्देलखण्ड में प्रचलित अपभ्रंश जान पड़ती है। प्रतीत होता है कि ये अपभ्रंश के जो विविध प्रकार बतलाये गये हैं, वे अपभ्रंश के ही विभिन्न बोली रूप हैं।

प्राकृत के व्याकरणकारों ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्गम संस्कृत से बतलाया है, किन्तु **श्री पी.डी. गुने** का मत है कि- 'इन भाषाओं का विकास इन बोलियों से हुआ है, जिन्हें वे अपभ्रंश के रूप कहते है। जिन प्राकृतों से इन अपभ्रंशों का विकास हुआ है, उनका मूलाधार एक बड़ी सीमा तक वैदिक भाषा है, इसलिये आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में एक सुदीर्घ वृंखला के साथ आये संस्कृत शब्दों का प्रयोग कहीं तत्सम, कहीं अर्द्ध-तत्सम और कहीं तद्भव रूपों में दिखाई देता है। इन शब्द रूपों के प्रयोग से ये भाषायें सीधे संस्कृत से उद्भव मान लेना उचित न होगा।'

पाणिनी तथा **पातंजलि** आदि के ग्रंथों से ऐसा प्रतीत होता है कि व्याकरण-सम्मत भाषा के विद्वान बहुत पहले से 'लोक भाषा' को 'भाषा' के नाम से सम्बोधित करते रहे। सं. 500 से 1000 वि. तक का काल तृतीय प्राकृत काल अथवा अपभ्रंश काल कहा जाता है। प्राकृत के तृतीय रूप अपभ्रंश में आरम्भ से ही अनेक प्रचलित शब्दों को स्थान मिल गया था। इसके पश्चात् इसके विकास-काल में उसके शब्दों एवं धातुओं में भी कुछ परिवर्तन हुये और उसके आधार पर अनेक नये शब्द भी बने। इस प्रकार इसे वह रूप प्राप्त हुआ जिससे यह भाषा विक्रम की 10वीं शती के पश्चात् आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को जन्म देने में समर्थ हुई।

डॉ. हरदेव बाहरी का मत है कि- 'सिन्ध को ग्रीक लोग 'इण्डस' कहते थे, जिससे उन्होंने देश का नाम 'इण्डिया' रखा और सिन्ध ही से फारसी में 'हिन्द' शब्द बना। हिन्द की भाषा का नाम हिन्दी है। इस अर्थ में अलबरूनी, अमीर खुसरो और अबुलफजल ने 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग किया है। यह नाम और अर्थ मध्यकाल में मुसलमान आगन्तुकों द्वारा दिया गया था। जब अनुभव हुआ कि हिन्द की भाषा एक नहीं है, तो विशिष्ट अर्थ में मध्यप्रदेश की भाषा को हिन्दी कहा जाने लगा।' आचार्य दण्डी ने अपभ्रंश को 'आभीरादि गिरा' कहा है। इससे इसका आभीर आदि जातियों की भाषा होना प्रमाणित होता है।

डॉ. नामवर सिंह के मतानुसार, 'महाभारत के निर्माण काल तक आभीर मध्यप्रदेश की पश्चिमी सीमा पर मौजूद थे।' दण्डी के समय तक वे पूर्व की ओर बहुत दूर तक समस्त मध्यप्रदेश तक फैल गये थे। कुछ विद्वान गुर्जर, ग्वाल आदि को अभीरों की ही संतानें मानते हैं।

कर्नल टाड के अनुसार 'ईसा की 6वीं शती में 'गुर्जरों' ने गुजरात और भड़ौंच पर अधिकार कर लिया। उनकी राजधानी विनमपाल थी। 10वीं शती में चालुक्यों ने इन्हें पूर्व की ओर खदेड़ दिया।'

इन गुर्जरों के साथ उनकी भाषा 'अपभ्रंश' निश्चित ही मध्यप्रदेश में आई होगी। इसमें 10वीं शती का मध्यप्रदेश (जिसके अंतर्गत आज का बुन्देलखण्ड भी है) की भाषा का अपभ्रंश होना प्रमाणित होता है।

श्री जी.वी. टैसोरी के अनुसार, 'ईसा के तीसरी से छटवीं शती तक अपभ्रंश आभीरों की बोली के रूप में विकसित होती हुई संस्कृत और प्राकृत के साहित्यिक रूप तक पहुँच गई और यह रूप (साहित्यिक रूप) बारहवीं शती तक सुरक्षित रहा।'

10वीं शती में चालुक्यों ने गुर्जरों को सौराष्ट्र व भड़ौंच से पूर्व की ओर खदेड़ दिया। इन्हीं के साथ अपभ्रंश भाषा भी मध्यप्रदेश में आई। मध्यप्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का एक रूप पहले से ही प्रचलित था जिसे हम 'मध्य देशीया अपभ्रंश' कहते हैं। यह मध्य देशीया अपभ्रंश 'गुर्जर अपभ्रंश' के रूप से प्रभावित हुई। गुर्जर अपभ्रंश और मध्य देशीया अपभ्रंश में अधिक अंतर नहीं होने से ये सहजता से परस्पर घुल-मिल गई। इस मिश्रित अपभ्रंश रूप ने ही 'बुन्देली' को जन्म दिया।

ऐतरेय ब्राह्मण ने कुरु, पांचाल, वश तथा उशीनरों के प्रदेश को मध्यप्रदेश के अंतर्गत बतलाया है। महर्षि मनु ने हिमाचल और विन्ध्याचल के मध्य में स्थित भू-भाग को 'मध्यप्रदेश' माना है। कवि राजशेखर (9वीं शती) के अनुसार, गौड़ आदि संस्कृत में स्थित हैं, लाट देशीयों की रुचि प्राकृत में है, सत्यभूमि टक्क और भादानक के वासी अपभ्रंश का प्रयोग करते हैं, अवन्ती, पारियात्र और दशपुर के निवासी भूतभाषा की सेवा करते हैं, वा कवि मध्यप्रदेश में रहता है वह सर्व भाषाओं का ज्ञाता है। मध्यप्रदेश कवि को तत्कालीन सभी भाषाओं, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश में मध्यप्रदेश (जिसमें वर्तमान बुन्देलखण्ड स्थित है) की सर्वाधिक विकसित भाषा मध्य देशीया अपभ्रंश ही है।

यह अत्यन्त ही स्पष्ट है कि चन्देल शासन काल में ही मध्य देशीया अपभ्रंश में काव्य-रचना आरंभ हो गई थी। अपभ्रंश का यही रूप बुन्देला शासन काल का आरम्भ होने तक क्रमशः विकसित होता हुआ 'बुन्देली' अथवा 'बुन्देलखण्डी' नाम से अभिहित हुआ होगा। 'बुन्देली' भाषा का विकास मध्य देशीया अपभ्रंश (शौरसेनी अपभ्रंश का एक रूप) से विक्रम की 11वीं शती के पश्चात् हुआ। इस प्रकार भाषा रूप 15वीं शती तक क्रमशः विकसित होता रहा।

'बुन्देली' मध्य देशीया शौरसेनी अपभ्रंश से उद्भूत मध्य देशीया हिन्दी का रूप है। श्री केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार, 'चंदेल साम्राज्य के अधिकांश भाग में बुन्देली भाषा अपनी स्थानीय बोलियों के साथ ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में विकसित हो रही थी।' इन स्थानीय बोलियों के सम्मिश्रण ने ही मध्य देशीया भाषा को 'बुन्देली' अथवा 'बुन्देलखण्डी' रूप प्रदान किया था।

प्रश्न–11. बुन्देली भाषा की उद्भवकालीन पृष्ठभूमि पर एक निबन्ध लिखिये।

अथवा

बुन्देली भाषा की उत्पत्ति [illegible]

उत्तर- बुन्देली [illegible] हिन्दी की [illegible] है। [illegible] पश्चिमी [illegible]

गुजरात तथा राजस्थान सहित आज का हिन्दी प्रदेश है। यह वही शौरसेनी है, जिसका विकास 11वीं शती में प्राचीन हिन्दी के रूप में हुआ है।

मध्य देशीया अपभ्रंश ही लोक प्रचलित भाषा रूप है। आचार्य हेमचन्द्र ने इसे ही 'ग्राम्य अपभ्रंश' कहा है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार, 'इसी ग्राम्य अपभ्रंश से ही आधुनिक देशी भाषाओं का विकास हुआ है।' बुन्देली पश्चिमी हिन्दी की भाषा है किन्तु यह शौरसेनी अपभ्रंश वरन् उसके पूर्व की प्राकृत की प्रवृत्तियों से भी सर्वथा मुक्त नहीं है। शौरसेनी अपभ्रंश अथवा उसके जिस मध्य देशीया रूप से प्राचीन हिन्दी का विकास हुआ, वह बुन्देली ही नहीं अपितु ब्रजभाषा, खड़ी बोली आदि के भी विकास का आधार बना।

बुन्देली के उद्भव की स्थिति हिन्दी की अन्य प्रादेशिक बोलियों के उद्भव से भिन्न नहीं है। सं. 500 वि. से 1000 वि. तक अपभ्रंश काल है। 11वीं से 14वीं शती के काल को संक्रमण काल कहा जाता है। इस काल में अपभ्रंश ने सरल होकर, ऐसा रूप ग्रहण किया जिससे आधुनिक कालीन हिन्दी की प्रादेशिक बोलियों का आरम्भ होता है। डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या इसी काल से आधुनिक आर्य भाषा काल का आरम्भ मानते हैं। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भी इसे आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल कहा है।

इस काल में जो बोलियाँ विकसित हुईं उनमें 'अपनापन' की विशिष्टता निहित है, भले ही उनका आधार तत्कालीन अपभ्रंश भाषायें रही हों। संक्रमण काल के पूर्व विवेचित साहित्य के भाषा रूप को अपभ्रंश के उत्तरकालीन रूप एवं तत्कालीन लोक प्रचलित बोलियों का एक समन्वित रूप कह सकते हैं। यही हिन्दी का आरम्भिक काल था। संक्रमण काल की सभी कृतियों में संस्कृत के तत्सम, अर्द्ध तत्सम और तद्भव रूपों के अतिरिक्त बुन्देली, ब्रज, कन्नौजी, अवधी, मालवी आदि सभी प्रमुख बोलियों की प्रवृत्तियाँ एवं रूप विद्यमान हैं।

1023 ई. में देशी भाषा बुन्देली में साहित्य की रचना आरम्भ हुई। वस्तुतः उसके डेढ़ सौ वर्ष पूर्व अर्थात् 9वीं शती के आरम्भ में ही बुन्देली का उद्भव हो गया था। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि- 'बुन्देली का उद्भव अन्य लोकभाषाओं के उदय के दो-डेढ़ सौ वर्ष पहले हो चुका था, इसलिये चंदेल काल में बुन्देली लोक-काव्य की रचना निरन्तर होती रही। दूसरे, ग्वालियरी बुन्देली का ही नया उत्थान था। तीसरे, ग्वालियरी के संगीत और पद परम्परा के रूप में बुन्देली ही मथुरा-वृन्दावन के केन्द्र की भाषा बनी, जो ब्रजी में ढलकर ब्रजभाषा के नाम से साहित्य में छा गई। वैसे बुन्देलखण्ड का केन्द्र बना ओरछा तथा पन्ना, जहाँ बुन्देली राजभाषा के पद पर आसीन होकर मध्यकाल की राजनीति के सम्पर्क की माध्यम बनी।'

प्रश्न-12. बोली, विभाषा और भाषा में अंतर स्पष्ट कीजिये।

अथवा

कोई बोली 'विभाषा' का रूप कब प्राप्त कर लेती है? उदाहरण देते हुये स्पष्ट कीजिये।

उत्तर- भाषा का प्रारम्भिक रूप 'बोली' कहलाता है। यही बोली विकसित होकर विभाषा का रूप ग्रहण कर लेती है।

बोली, विभाषा और भाषा के स्वरूप का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है-

बोली का स्वरूप- बोली, भाषा का वह स्थानीय रूप होता है जिसका प्रयोग केवल बोलचाल के लिये होता है। इसका कोई लिखित एवं साहित्यिक रूप नहीं होता। बोली का क्षेत्र सीमित होता है अर्थात् यह सीमित क्षेत्र में ही बोली जाती है। इसका कोई व्याकरण नहीं होता अर्थात् व्याकरण की दृष्टि से शुद्धता का प्रायः अभाव रहता है, लेकिन इसके बाद भी क्षेत्र में इसकी लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आती। बोली के शब्दों में सरलता एवं सहजता होने से अपनेपन की अनुभूति होती है। बोली में सरसता होती है।

विभाषा का स्वरूप- जब कोई बोली विकसित होकर साहित्यिक रूप ले लेती है तथा इसके बोलने का क्षेत्र बढ़कर प्रांत और उप प्रांत की सीमा तक फैल जाता है, तब वह बोली विभाषा कहलाने लगती है।

जैसे-अवधी, ब्रज, खड़ी बोली, भोजपुरी आदि जो पूर्व में बोलियाँ थीं आज विकसित होकर विभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

भाषा का स्वरूप- जिन ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से व्यक्ति अपने भावों तथा विचारों को व्यक्त कर आदान-प्रदान करता है और जिसका एक विशिष्ट साहित्यिक स्वरूप होता है उसे 'भाषा' की संज्ञा दी जाती है। जब कोई विभाषा अपना विकास पा कर व्यापक रूप धारण कर लेती है तथा साहित्यिक क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लेती है तो उस विभाषा को भाषा कहा जाता है।

इस प्रकार बोली 'विभाषा' बनती है और विभाषा भाषा का रूप ग्रहण करती है, लेकिन न तो सभी बोलियाँ विभाषा बनती हैं और न सभी विभाषाएं भाषा। किसी बड़े क्षेत्र में जब वहाँ की बोली, वहाँ के शिष्ट समुदाय के विचार-विनिमय का माध्यम बन जाती है तो उसका विकास होने लगता है। सभी सम्बन्धित कार्यों का वह माध्यम बन जाती है। साहित्य जगत् में विशेष स्थान पा कर धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में अपना प्रभाव जमा लेती है और भाषा के रूप में स्थापित हो जाती है। उदाहरण के लिये 'खड़ी बोली' विभाषा के रूप में विकसित होकर भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है।

तात्पर्य यह है कि भाषा का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है। विभाषायें या प्रान्तीय भाषायें उसका अंग बन जाती हैं। भाषा अपनी विभाषाओं के विकास में योगदान भी देती है। उदाहरण स्वरूप हिन्दी भाषा है और उसकी विभाषायें हैं- वांगरू, राजस्थानी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी और बिहारी।

प्रश्न-13. बुन्देली की उप-बोलियों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

अथवा

बुन्देली की विभिन्न उपबोलियों पर प्रकाश डालते हुये उनकी विशेषतायें लिखिये।

उत्तर- बुन्देलखण्ड के विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने वाली 'बुन्देली' एक लोकभाषा है। विस्तृत क्षेत्र में प्रभावी होने के कारण बुन्देली की कई उप- बोलियाँ हैं। बुन्देली बुन्देलखण्ड तक की सीमित लोकभाषा नहीं है। इसका क्षेत्र उत्तर में यमुना और दक्षिण में नर्मदा नदी तक ही सीमित न रहकर दोनों नदियों के पार उत्तर और दक्षिण में फैला हुआ है। इस प्रकार उत्तर-दक्षिण में 300 मील तथा पूर्व-पश्चिम में 225 मील तक बुन्देली का क्षेत्रफल फैला

हुआ है। अतः बुन्देली लोकभाषा लगभग 67,500 वर्ग मील में बोली जाती है। एक ही लोकभाषा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपना रूप बदल लेती है, लेकिन इसके बाद भी भाषा की मौलिक एकरूपता विद्यमान रहती है, किन्तु विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृति, रीति-रिवाज, परम्परागत मान्यतायें उच्चारण विधि, उस क्षेत्र में बोली जाने वाली अन्य बोलियों आदि के कारण लोकभाषा का रूप परिवर्तित हो जाता है। इन बदले हुये रूपों को उप बोलियाँ कहा जाता है।

बुन्देली की उप बोलियों के नामकरण के दो आधार है - जाति और स्थान। इसके कुछ रूप ऐसे है, जो विशिष्ट जातियों द्वारा ही विशेष रूप से बोले जाते हैं। ऐसे रूप उस जाति के नाम पर आधारित है - पँवारी, लोधन्ती, राठौरी, भदावरी, बनाफरी आदि।

कुछ नाम स्थान विशेष में बोली जाने के कारण रखे गये है जैसे - तोहरगढ़ी, खटोला, छिन्दवाड़ी नागपुरी हिन्दी इसी प्रकार के नाम है। इसके कुछ रूप परिनिष्ठित हैं, जो कुछ अन्य सीमावर्ती बोलियों से मिश्रित हैं। वस्तुतः बुन्देली का एक लोकभाषा के रूप में जो विकास परिलक्षित है, वह बहुरूपी है। बुन्देली का एक काव्य-भाषा, राजभाषा और लोक भाषा के रूप में गत पाँच सौ वर्षों से जो निरन्तर विकास हो रहा है, वह भाषायी दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अध्ययन की दृष्टि से इन उप-बोलियों को क्षेत्रीय दृष्टि से पाँच भागों में बाँटा है - (i) उत्तरी क्षेत्र, (ii) दक्षिणी क्षेत्र, (iii) पूर्वी क्षेत्र, (iv) पश्चिमी क्षेत्र, और (v) मध्यवर्ती क्षेत्र।

मध्यप्रदेश के उत्तरी जिले मुरैना (श्योपुर जिले को छोड़कर) भिण्ड और ग्वालियर जिला उत्तरी क्षेत्र के अन्तर्गत है। इसके अतिरिक्त उत्तरप्रदेश के आगरा, मैनपुरी और इटावा जिलों के मध्यप्रदेश के इन उत्तरी जिलों से लगे हुये कुछ दक्षिणी भाग भी इसी क्षेत्र के अंतर्गत हैं। इस क्षेत्र में बुन्देली के तीन रूप प्रचलित है

(अ) ब्रज मिश्रित रूप

(ब) कन्नौज मिश्रित रूप,

(स) खड़ी बोली प्रभावित प्रधान रूप।

ये तीनो रूप 'भदावरी अथवा तोमरगढ़ी' कहे जाते हैं।

प्रश्न–1 4. भदावरी (ब्रज–कन्नौजी मिश्रित बुन्देली) के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुये भदावरी की विशेषतायें बताइये:

उत्तर– बुन्देली लोक भाषा की एक उप-बोली 'भदावरी' कहलाती है जो ब्रज-कन्नौजी मिश्रित बोली है। सामान्य रूप से यह मुरैना से आगरे के दक्षिणी भाग तक बोली जाती है। इस मिश्रित रूप में बुन्देली की अधिकता और ब्रज के रूप की न्यूनता होने से हम इसे बुन्देली का ही रूप मानते हैं। ग्रियर्सन तथा अन्य भाषाशास्त्रियो ने भी इसे माना है।

'आगरा–गजेटियर' के अनुसार भदावर राजपूतो का राज्य आगरा के दक्षिणी भाग (वर्तमान बाह तहसील) से ग्वालियर राज्य के मध्य तक (मुरैना इसी भाग में है) था। भदावर राजपूतों की बोली होने के कारण ही 'बुन्देली का यह ब्रज मिश्रित रूप 'भदावरी' कहलाता है। वर्तमान ग्वालियर जिले के उत्तर पश्चिमी भाग में भी बुन्देली का यही रूप प्रचलित है।

ग्वालियर अनेक वर्षों तक तोमर राजपूतों का गढ़ रहा है। इन तोमर राजपूतो की भी यही बोली होने के कारण इसे 'तोमर गढ़ी' अथवा 'तोमरगढ़ी' भी कहा जाता है।

डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार, 'इस बोली का क्षेत्र भदावर क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। यह चम्बल से आरम्भ होकर गुना तक फैली है। इसके पश्चिम में ब्रज भाषा तथा हाड़ौती (राजस्थानी की एक उप बोली) का क्षेत्र तथा पूर्व में पवारी बुन्देली का क्षेत्र है। दक्षिण में यह मालवी में विलीन हो जाती है। आगरा जिले में यह चम्बल के तटवर्ती आगरा के दक्षिणी भाग में बोली जाती है। यह मैनपुरी जिले के खरका क्षेत्र के भी कुछ लोगो द्वारा बोली जाती है। इटावा जिले के यमुना और चम्बल के मध्य में स्थित भाग में भी भदावरी ही बोली जाती है। इस प्रकार यह एक विस्तृत क्षेत्र की बोली है।'

'आगरा–गजेटियर' में लिखा गया है - 'अधिकाश जन-समूह ब्रज बोलता है और पूर्वी प्रदेश की बोली प्रायः अन्तर्वेदी ही है, जिसे इस क्षेत्र के ग्रामीण 'गाँवारी' कहते हैं। बाह तहसील की बोली बुन्देली का एक उप रूप है जो पश्चिमी हिन्दी की एक शाखा है। यह बोली (बाह तहसील) पूर्व के नाम 'भदावरी' के आधार पर 'भदावरी' कहलाती है।'

अतः हम कह सकते हैं कि भदावरी के तीन रूप है -

(1) ब्रज- बुन्देली का मिश्रण,

(2) ब्रज-- कन्नौजी का मिश्रण,

(3) कन्नौजी और बुन्देली का मिश्रण।

भदावरी की विशेषतायें–

(1) 'ओ' संयुक्त स्वर के स्थान में प्रायः 'औ' का प्रयोग होता है; कहीं-कहीं 'औ' का भी प्रयोग होता है। यथा- मोड़ा-मौड़ा, उनखो-उनखौ (यह ब्रज का प्रभाव) है।

(2) 'ए' के स्थान पर 'ऐ' का प्रयोग।

(3) अनेक आकारान्त संज्ञा शब्दों का अंतिम वर्ण इकारान्त उकारान्त उच्चारित होता है।

यथा- जात-जाति, पौर-पौरि, घर-घरु, मात-मातु।

(4) समीकरण की प्रवृत्ति। यह मध्य 'ए' युक्त शब्दों में परिलक्षित होती है।

यथा- करदओ-कद्दओ, सुरति-सुत्ती, परदेस-पद्देस।

(यह कन्नौजी व ब्रज की प्रवृत्ति है)

(5) 'ह' के विलुप्ति की प्रवृत्ति भदावरी मे विद्यमान है।

यथा- कही कई, हाथी-हत्ती

(6) संयुक्ताकार की प्रवृत्ति।

यथा- दिन ड्वे डिंडूबे, चकारन-चकान्न, प्रजा-पज्जा। (कन्नौजी से भदावरी में आई)

(7) 'न' के स्थान में 'ल' का उच्चारण।

यथा- जनम-जलुम, हनुमान-हलुमान।

रूपात्मक एवं ध्वन्यात्मक दृष्टि से सामान्य बुन्देली, भदावरी से बहुत कुछ भिन्न है। यही अभिन्नता भदावरी को बुन्देली की एक उप बोली प्रमाणित करती है।

प्रश्न– 15. दक्षिणी क्षेत्र के बुन्देली रूपों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– विन्ध्याचल की उपत्यका और नर्मदा के कछार को पार कर, बुन्देली भाषी प्रदेश का दक्षिणी क्षेत्र आरम्भ होता है, जिसमें बैतूल, छिन्दवाड़ा और सिवनी जिले स्थित हैं। इनके अतिरिक्त बालाघाट जिला भी दक्षिणी क्षेत्र में ही माना जाता है, किन्तु ये सभी जिले बुन्देली भाषी नहीं हैं।

(1) बैतूल जिले के बोली रूप– बैतूल जिला बुन्देली भाषी जिला होशंगाबाद के दक्षिण में है। इसकी पूर्वी सीमा से छिन्दवाड़ा जिला, दक्षिणी सीमा से मराठी भाषी नागपुर तथा अमरावती जिला प्रारम्भ होता है। सीमावर्ती प्रभाव का परिणाम स्पष्ट है। इसके उत्तरी सीमावर्ती भाग की बोली पर होशंगाबाद की बुन्देली का प्रभाव, पूर्वी सीमावर्ती भाग की बोली पर छिन्दवाड़ा की बोली का प्रभाव तथा दक्षिणी और पश्चिमी सीमावर्ती भाग की बोली पर मराठी का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन प्रभावी भागों की बोलियों ने कुछ मिश्रित रूप धारण कर लिया है, किन्तु यह प्रभाव उनका मूल स्वरूप सर्वथा समाप्त नहीं कर पाया, केवल उसे विकृत ही कर सका।

रसेल ने 'बैतूल–गजेटियर' तथा 'होशंगाबाद–गजेटियर' में 'मालवी' बतलाई है। बैतूल जिले में फैले पँवार, किरार, हिन्दी भाषी कुनवी, रघुवंशी, तेली, कलार, लोहार, बढ़ई, नाई, धोबी, रंगारे आदि मालवी ही बोलते हैं, यद्यपि इनके द्वारा बोले जाने वाले मालवी रूपों में परस्पर कुछ अंतर अवश्य है। उत्तरप्रदेश से आकर बसे 'गौली' तथा जिले के उत्तरी सीमावर्ती क्षेत्र के कुछ हिन्दू परिवार ही ऐसे हैं, जिनकी पारिवारिक बोली में बुन्देली का मालवी मिश्रित रूप देखा जा सकता है।

(2) बालाघाट जिले के बोली–रूप– बुन्देली भाषा क्षेत्र के अंतर्गत बालाघाट जिला नहीं आता है। 'बालाघाट गजेटियर' के लेखक सी.ई.लो. के मतानुसार– 'इस जिले के आदिवासियों के अतिरिक्त हिन्दू परिवारों की बोली मराठी मिश्रित हिन्दी है। इनमें से इस जिले में बसे पँवार पूर्वी हिन्दी (बघेली) और मराठी का मिश्रित रूप बोलते हैं और लोधी पश्चिमी (बुन्देली) और मराठी का मिश्रित रूप बोलते हैं।'

डॉ. ग्रियर्सन ने इस जिले की बोलियों के सम्बन्ध में लिखा है– 'बालाघाट में मराठी के रूप में अतिरिक्त पूर्वी हिन्दी के रूप बोले जाते हैं, जो बघेली के मिश्रित रूप हैं। इसे बुन्देली का एक रूप कहा जा सकता है।'

इस जिले को बुन्देली भाषी जिला स्वीकार नहीं करते हैं, किन्तु बालाघाट के जिले के लोधियों की बोली बुन्देली का ही मिश्रित रूप है।

(3) नागपुरी हिन्दी– छिन्दवाड़ा जिले के दक्षिण में नागपुर जिला है, इसकी मुख्य भाषा मराठी है। इस जिले से संलग्न चन्द्रपुर, भण्डारा एवं बुलढाना जिलों में कुछ ऐसी जातियाँ हैं जिनकी बोली को मराठी मिश्रित बुन्देली कहा जाता है। इन जिलों में बसे कोष्टि और कुम्हार जाति के लोग बुन्देलखण्ड से आकर यहाँ बस गये हैं। उनकी भाषा बुन्देली थी जो यहाँ आने पर स्थानीय प्रभाव के कारण मराठी मिश्रित बुन्देली हो गई है। डॉ. ग्रियर्सन ने भी बोली के इस रूप को नागपुरी–हिन्दी कहा है।

(4) छिन्दवाड़ा जिले के बुन्देली रूप– छिन्दवाड़ा जिले के उत्तर में बुन्देली भाषा होशंगाबाद जिला (होशंगाबाद एवं सोहागपुर तहसीलें) तथा नरसिंहपुर जिला, दक्षिण में मराठी भाषी नागपुर जिला, पूर्व में बुन्देली भाषी सिवनी जिला तथा पश्चिम में मालवी बैतूल जिला है। छिन्दवाड़ा तहसील का मध्यपूर्वी भाग शुद्ध बुन्देली के अधिक निकट है। जिले के शेष भाग में बुन्देली के अनेक रूप प्रचलित हैं। 'छिन्दवाड़ा–गजेटियर' में श्री आर.व्ही. रसेल ने– 'इस जिले को बुन्देली भाषी कहकर उप–बोली के बोलने वालों की संख्या 53 प्रतिशत बतलाई है।' रसेल के अनुसार, मराठी बोलने वालों की संख्या 19 प्रतिशत है। 'इम्पीरियल गजेटियर' के अनुसार, ये बुन्देली भाषी वे हैं, जो पश्चिमी तट प्रदेश से बुन्देलखण्ड होते हुये यहाँ आकर बस गये थे।' इस जिले में 61 बोलियाँ प्रचलित हैं जिनमें मराठी, हिन्दी, मालवी, गोंड़ी, कोर्कू आदि मुख्य हैं।

बोली के मिश्रित रूप में किसी एक बोली की प्रधानता होती है किन्तु जातियों के द्वारा बोली जाने वाली बुन्देली का यह रूप नहीं है। इन रूपों में मालवी और बुन्देली के मिश्रण से नये शब्द बन गये हैं और कहीं बुन्देली और मराठी के मिश्रण ने ऐसे नये शब्दों का निर्माण कर दिया है, जिन्हें हम किसी भी एक बोली अथवा भाषा का रूप नहीं कह सकते हैं।

डॉ. ग्रियर्सन ने बुन्देली के इन रूपों को 'विकृत–बोलियाँ' कहा है। इनके रूपों में कुछ समानतायें हैं किन्तु प्रत्येक की स्थानीय और जातीय विशेषतायें भी हैं।

(5) सिवनी जिले के बुन्देली रूप– सिवनी जिले की पश्चिमी सीमा छिन्दवाड़ा जिले की सीमा से, पश्चिमोत्तर सीमा नरसिंहपुर जिले से, उत्तरी सीमा जबलपुर से पूर्वी मिश्रित छत्तीसगढ़ भाषी मण्डला जिले से तथा बालाघाट जिले से और दक्षिणी सीमा मराठी भाषी क्षेत्र से संलग्न है। इस संलग्नता के कारण इस जिले के पश्चिमी, पश्चिमोत्तरी और उत्तरी भाग की भाषा बुन्देली बनी रही किन्तु पूर्वी भाग में प्रचलित बुन्देली पर मण्डला की मिश्रित छत्तीसगढ़ी तथा बालाघाट की बोली छत्तीसगढ़ी और मराठी के मिश्रित रूप से प्रभावित हो गई। दक्षिणी क्षेत्र की बोली पर मराठी का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

'सिवनी गजेटियर' में रसेल ने इस जिले में 58 प्रतिशत बुन्देली भाषी बतलाये हैं। शेष मराठी और गौड़ी बोलने वाले हैं।

प्रश्न– 16. पश्चिमी क्षेत्र की बुन्देली भाषा का वर्णन कीजिये।

उत्तर– इस क्षेत्र में श्योपुर जिला, शिवपुरी, गुना, विदिशा जिले का पश्चिमी भाग, सीहोर जिला (आष्टा तहसील छोड़कर) भोपाल तथा होशंगाबाद जिले की सिवनी, हरदा तहसील स्थित हैं।

श्योपुर जिले का बुन्देली रूप– इस क्षेत्र की उत्तरी, दक्षिणी और पश्चिमी सीमा राजस्थानी भाषी क्षेत्र से संलग्न है अतः इस क्षेत्र की बोली का राजस्थानी से प्रभावित होना स्वाभाविक है। उत्तरी और पश्चिमी सीमा से राजस्थान का जो भाग संलग्न है, वह राजस्थानी के एक रूप जयपुरी अथवा 'ढंडारी' का क्षेत्र है। मुरैना के इस सीमावर्ती भागों में प्रचलित बुन्देली पर इसी राजस्थानी बोली का कुछ प्रभाव मिलता है।

पश्चिमी-शिवपुरी की बोली– शिवपुरी की पश्चिमी सीमा राजस्थानी क्षेत्र से मिली हुई है, अत पश्चिमी शिवपुरी की बोली पर राजस्थानी का प्रभाव श्योपुर जिले की तरह होना चाहिये, किन्तु ऐसा है नहीं। इस क्षेत्र पर राजस्थानी का नाम मात्र का प्रभाव है।

पश्चिमी गुना जिले की बोली– गुना की पश्चिमी सीमा से भी राजस्थानी भाषी प्रदेश संलग्न है। यहीं से दक्षिण की ओर मालवी भाषी भाग आरम्भ होता है। इस भाग की बुन्देली पर राजस्थानी और मालवी का एक साथ प्रभाव दिखाई देता है। इस क्षेत्र की बोली राजस्थानी प्रधान बुन्देली है।

पश्चिमी विदिशा का बुन्देली रूप– इस भाग का मुख्य स्थान सिरोंज है जो दक्षिणी गुना की पूर्वी सीमा के समीप स्थित है। गुना के पश्चिमी भाग में स्थित कुंभराज-क्षेत्र का बोली रूप राजस्थानी मालवी प्रधान बुन्देली है। यहाँ की बोली पर मालवी का पूर्ण प्रभाव है। इसके अलावा खड़ी बोली, और राजस्थानी का नाम मात्र का प्रभाव है।

सीहोर जिले की बुन्देली– इस जिले की उत्तरी सीमा विदिशा से, दक्षिणी सीमा होशंगाबाद से और पूर्वी सीमा रायसेन जिले से मिली हुई है। इस भाग में बुन्देली के तीन रूप पाये जाते हैं। उत्तरी भाग की बुन्देली विदिशा की बुन्देली की तरह, पूर्वी भाग की बुन्देली रायसेन क्षेत्र की बुन्देली की तरह और दक्षिणी भाग की बुन्देली मध्य होशंगाबाद की बुन्देली के समान है। इनमें केवल विदिशा क्षेत्र से संलग्न भाग की बुन्देली ही शुद्ध बुन्देली के निकट है। मध्य सीहोर क्षेत्र की बुन्देली का भी शुद्ध रूप है। कुछ हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा बोली जानें वाली बुन्देली पर खड़ी बोली तथा उर्दू का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है जिसके कारण बुन्देली का मिश्रित रूप बड़ा विचित्र-सा हो गया है।

भोपाल क्षेत्र की बोली रूप– इस क्षेत्र में बसे केवल ग्रामीण अंचल में बोली जाने वाली बोली का रूप बुन्देली है। शहरी क्षेत्र में, राजधानी होने के कारण अनेक प्रकार का मिश्रण विद्यमान है।

आष्टा क्षेत्र की बोली– वास्तव में यह क्षेत्र मालवी भाषी क्षेत्र है। यहाँ बुन्देली का बहुत ही कम प्रभाव है।

पश्चिमी होशंगाबाद का बोली रूप– पश्चिमी होशंगाबाद जिला (सिवनी-हरदा तहसीलें) बुन्देली भाषी क्षेत्र के अंतर्गत आता है। सिवनी क्षेत्र में मालवी प्रभावित बुन्देली रूप पाया जाता है।

हरदा क्षेत्र का बोली रूप– इस तहसील की पश्चिमी सीमा निमाड़ी भाषी क्षेत्र से लगी हुई है, इसका पूर्वी और मध्यवर्ती भाग मालवी भाषी है। अतः हरदा जिले की बोली निमाड़ी, मालवी और बुन्देली का मिश्रित रूप है।

बुन्देली भाषा का इतिहास एवं विकास

प्रश्न– 1. बुन्देली साहित्य के इतिहास के काल विभाजन का परिचय दीजिये।

अथवा

बुन्देली साहित्य के इतिहास के काल विभाजन पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

अथवा

बुन्देली साहित्य के इतिहासकारों द्वारा किये गये काल विभाजन का उल्लेख करते हुये काल विभाजन के आधार की विवेचना कीजिये।

उत्तर– बुन्देलखण्ड के विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा बुन्देली है। बुन्देलखण्ड की भौगोलिक सीमा का विस्तार अधिक होने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में बुन्देली के विविध रूप दिखाई देते हैं। देश का मध्य भाग होने के कारण प्राकृतिक वैभव, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। इस प्रदेश में विदेशी आक्रमणों का प्रभाव बहुत पड़ा है। यहाँ के निवासियों का जीवन प्राकृतिक साधनों पर आधारित रहा है। इसीलिये प्राचीन काल से इनका जीवन सरल तथा श्रम साध्य रहा है। उनके रीति रिवाज, धार्मिक विचारधारा, व्यवसाय एवं उनके सांस्कृतिक वातावरण ने यहाँ के साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है।

बुन्देली साहित्य का इतिहास एक हजार वर्ष से अधिक पुराना है। इस लम्बे समय में कई साहित्यकार हुये जिन्होंने बुन्देली साहित्य के विकास में योगदान देते हुये कई गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं में अनेक रचनाओं का सृजन किया। इन रचनाओं का विधिवत अध्ययन करने के लिये किसी सुविधाजनक पद्धति की आवश्यकता थी। अतः इसीलिये बुन्देली साहित्य के इतिहास को वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा विभिन्न कालखण्डों में विभाजित करना आवश्यक समझा गया।

काल-विभाजन– यद्यपि बुन्देलखण्ड का निर्माण 16वीं सदी के लगभग मध्यकाल में हो चुका था लेकिन सन् 1553 ई. (सं. 1610 वि.) में जब महाराजा रुद्रप्रताप ने अपना राज्य स्थापित किया तब से बुन्देली भाषा का क्रमिक विकास प्रारम्भ हुआ। लेकिन बुन्देली का असल वैभव साहित्यकार जगनिक और उनके बाद के समय में बुन्देली काव्य धारा की दशा में विशेष परिवर्तन आया। मध्य काल में श्रृंगार एवं वीर रस की रचनाओं की प्रधानता रही। आदि काल में जगनिक के बाद, विष्णुदास, मध्य में केशवदास, गोरेलाल उत्तर मध्यकाल में पद्माकर तथा इनके बाद आधुनिक रचनाकारों ने शताब्दियों से चली आ रही परम्पराओं के विकास में अपना योगदान दिया।

डॉ. ग्रियर्सन ने काल विभाजन की पद्धति को सर्वप्रथम अपनाया। बुन्देली साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन की सुविधा के लिये डॉ. बल्लभ भद्र ने समस्त बुन्देली काव्य के इतिहास को निम्न खण्डों के अंतर्गत रखा है-

1. भाषा काव्य आन्दोलन	9वीं से 13वीं विक्रमी
2. कथा काव्य काल	13वीं से 16वीं विक्रमी तक
3. रीति भक्ति काव्य काल	16वीं से 17वीं विक्रमी तक
4. सांस्कृतिक उन्मेष काल	17वीं से 18वीं विक्रमी तक
5. श्रृंगार काव्य काल	18वीं से 1950 विक्रमी तक
6. आधुनिक काल (स्वतंत्रता पूर्व)	1950 से 2000 विक्रमी तक
7. अत्याधुनिक काल (स्वातंत्र्योत्तर)	2000 विक्रमी से अब तक

इसके अतिरिक्त **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** द्वारा किया गया काल-विभाजन इस प्रकार है:-

1. आदिकाल (वीर गाथा काल) सम्वत् 1050 से 1375
2. पूर्व मध्यकाल (भक्ति काल) सम्वत् 1375 से 1700

3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) सम्वत् 1700 से 1900

4. आधुनिक काल (गद्यकाल) सम्वत् 1900 से आज तक।

प्रश्न–2. 'वीर गाथा काल में साहित्य निर्माण पर तत्कालीन परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव था।' वर्णन कीजिये।

अथवा

बुन्देली साहित्य के आदि काल की परिस्थितियों ने साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– बुन्देली साहित्य का आदिकाल अव्यवस्था और उथल-पुथल वाला समय रहा है। भाषा के विकास में अवरोध आने से एकरूपता का अभाव रहा। आदि काल के साहित्य को उस समय की सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों ने बहुत प्रभावित किया।

1. **सामाजिक परिस्थितियाँ–** यह विकसित सामाजिक व्यवस्था का युग था। इस समय राजाशाही एवं सामन्तशाही का युग था। सामन्ती शासन में सामन्ती समृद्धि एवं विलासिता की प्रवृत्ति अधिक थी। जनता अनपढ़ और गरीब थी। समाज पीड़ित और उपेक्षित था। राजपूतों का उत्थान काल था। वे अपने वैयक्तिक स्वार्थ में लिप्त रहने से लालची एवं क्रोधी थे। इसके साथ-साथ राजपूत वीर थे लेकिन उनमें राष्ट्रीय चेतना का अभाव था। उस समय समाज में नारी की पवित्रता का सम्मान अधिक था। नारी सम्मान को लेकर कई बार युद्ध भी लड़े गये। कई प्रकार की प्रथायें उस समय के समाज में प्रचलित थीं। बाल-विवाह और नारी-जौहर प्रथा राजपूती समाज में प्रचलित थी। विधवा विवाह का निषेध था। कई उपजातियाँ बन गई थीं तथा छुआछूत की भावना प्रबल हो गई थी। सामन्तों की विलासिता से समाज भयभीत रहता था। नारी भोग की वस्तु मानी जाती थी। कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति चाहे जिस महिला को उठा ले जाता था। नारी का इस प्रकार बलात् अपहरण राजाओं का शौक हो गया। समाज बुरी तरह रूढ़िग्रस्त था।

2. **धार्मिक परिस्थितियाँ–** सामाजिक अव्यवस्था के कारण धार्मिक क्षेत्र में भी अव्यवस्था थी। उस समय उत्तर भारत में तीन धर्म प्रमुख थे– पौराणिक हिन्दू धर्म, जैन धर्म और बौद्ध-धर्म। तीनों धर्म एक-दूसरे का विरोध करते थे। धार्मिक विचारधारा, अंधविश्वास, झाड़फूंक और तंत्र विद्या से प्रभावित थी। पूरा समाज विकृत धर्म और अंधविश्वास में जकड़ा हुआ था।

तांत्रिक वामाचारियों के चंगुल से समाज को मुक्त कराने के प्रयत्न चलते रहे, लेकिन इस सम्बन्ध में वास्तविक सफलता जगदगुरू शंकराचार्य के समय में मिली। 8वीं शताब्दी में जगदगुरू शंकराचार्य जी ने बौद्ध धर्म द्वारा फैलाये जा रहे तांत्रिक वामाचार पर प्रबल आघात किये। इनके बाद गोरखनाथ ने योग सम्प्रदाय की स्थापना कर संयम और आचार पर अधिक बल दिया। इन्हीं दिनों वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों द्वारा लोक-व्यवहार में योग, आचार और व्रत आदि का उपदेश दिया।

यद्यपि वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों का बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रवर्तकों ने विरोध करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मुस्लिम आतताइयों के आक्रमणों के कारण भी समाज में वातावरण

दूषित होता रहा। परिणामतः साहित्य जगत् में इसी समय भक्ति आन्दोलन का जन्म हुआ जिससे साहित्य एवं सामाजिक व्यवस्था में सुधार आना प्रारम्भ हुआ।

3. **राजनैतिक परिस्थितियाँ–** ये राजनैतिक अस्थिरता का युग था। उस समय के राजा एवं सामन्त अपने-अपने राज्य के विस्तार के अधिक महत्वाकांक्षी थे। अतः इस युग में राजाश्रय में रहने वाले कवि एवं साहित्यकारों ने साहित्य रचना की। ये वीर रस प्रधान रचनाओं का युग था। कवियों ने प्रमुखतः अपने राजाओं के यशोगान में साहित्य निर्माण किया। प्रमुख कवियों के रूप में चन्दवरदाई पृथ्वीराज के राजाश्रय में थे, जगनिक परमार्दि देव के राज्य में और भट्ट केदार तथा मधुकर भट्ट जयचन्द के राजकवि थे। नरपति आल्ह राजा बीसल देव के आश्रित थे। इस प्रकार हर कवि अपने-अपने आश्रयदाता को सर्वश्रेष्ठ योद्धा सिद्ध करने में लगे हुये थे। राजा की प्रसिद्धि में बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया जाता था अतः इस युग में अतिशयोक्तिपूर्ण साहित्य निर्माण की प्रमुखता रही। पारस्परिक अथवा विदेशी आक्रान्ताओं से होने वाले युद्ध में इस युग में किसी न किसी सुन्दर नारी को युद्ध का प्रमुख आधार बनाया जाता रहा। अतः इस युग में वीर रस एवं श्रृंगार रस के समन्वय वाले साहित्य निर्माण की प्रधानता रही।

4. **सांस्कृतिक परिस्थितियाँ–** आदिकाल में इस युग में इस्लाम धर्म का प्रभुत्व बढ़ने लगा था। हमलावर विदेशी मुसलमान राजाओं के राज्य स्थापना के बाद दो संस्कृति विकसित थीं– एक भारतीय संस्कृति और दूसरी मुस्लिम संस्कृति। छोटे-मोटे भेदभाव को भूलकर लोग राष्ट्रवादी विचारधारा को अपनाने लगे थे। ये दो संस्कृतियों का संक्रमण एवं ह्रास का समय था। यहाँ के हिन्दू समाज में स्वाधीनता एवं देश भक्ति के भाव जाग्रत होने लगे थे। इस समय संगीत, चित्रकला, मूर्ति एवं स्थापत्य आदि कलाओं में जातीय गौरव की भावना की अभिव्यक्ति की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती थी। इस युग में विशेष रूप से भव्य मंदिरों का निर्माण कर धार्मिक सद्भाव बनाये रखने के प्रयत्न किये गये। भुवनेश्वर, जगन्नाथपुरी, खजुराओं, सोमनाथ, वैलोर, कांचि एवं तंजौर आदि स्थानों पर भव्य मंदिरों का निर्माण किया गया। मुसलमान राजाओं द्वारा ऊँची मीनारें (कुतुबमीनार), ऊँचे दरवाजे (बुलन्द दरवाजा) फतेहपुर सीकरी। इस युग में संगीत, चित्रकला और स्थापत्य-कला में दोनों संस्कृतियों के सम्मिश्रण की झलक स्पष्ट दिखाई देने लगी थी।

परिणामस्वरूप आदि काल के इस युग में साहित्य निर्माण की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो, खुमान रासो, विद्यापति की रचनायें और अमीर खुसरों की रचनाओं का निर्माण प्रमुख रूप से हुआ।

प्रश्न–3. बुन्देलखण्ड के प्रमुख साहित्य केन्द्रों का उल्लेख करते हुये कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

उत्तर– बुन्देलखण्ड का निर्माण 10वीं सदी में हो गया था। बुन्देलखण्ड की भाषा बुन्देली है। बुन्देली साहित्य के प्रमुख केन्द्रों में पन्ना, छतरपुर, ओरछा, ग्वालियर, झांसी, टीकमगढ़, दतिया, सागर, सेंवढ़ा, बांदा, अजयगढ़, बिजाबर, चरखारी आदि राज्यों में काव्य बहुविधि रूप में उल्लेखनीय है। साहित्यिक एवं कलात्मक दृष्टि से ओरछा, बुन्देलखण्ड का अत्यन्त महत्वपूर्ण राज्य रहा है। बुन्देली साहित्य के आदिकाल में वीर रस की रचनाओं का निर्माण

लोक भाषा में हुआ। आदि काल के प्रमुख कवि जगनिक तथा विष्णुदास थे। मध्यकाल में वीर रस की रचनाओं के साथ-साथ श्रृंगार मिश्रित भक्ति साहित्य लिखा गया। मगर इसमें प्रमुखता श्रृंगार रस की रही। मध्यकाल के प्रमुख कवि केशवदास, और गोरेलाल ने बुन्देलखण्ड के साहित्य में अपना योगदान दिया।

आधुनिक कवियों ने भी बुन्देलखण्ड साहित्य की चली आ रही इसी परम्परा को पोषित किया। अन्य कवियों में महाराज मधुकरशाह हरीराम व्यास, गोविन्द स्वामी, स्वामी अग्रदास ने भी अपनी रचनायें लिखकर बुन्देली साहित्य में सराहनीय योगदान दिया। अन्य कवियों में बाण भट्ट, गुलाब कवि, लाल कवि, देवीदास, गोविन्द मिश्र, हरिसेवक मिश्र, हरिकेश कवि, मोहन भट्ट, रूप नारायण मिश्र, गुमान मिश्र और बोधा कवि प्रमुख हैं।

प्रश्न–4. श्रृंगार काव्य के प्रमुख बुन्देलखण्डी कवि पद्माकर का परिचय एवं काव्यगत विशेषताओं का मूल्यांकन कीजिये।

उत्तर– कवि पद्माकर का जन्म 1810 में माना जाता है। इनके जन्म स्थान के विषय में साहित्यकारों में मतभेद है। श्री नकछेंदी तिवारी इनका जन्मस्थान बांदा को मानते हैं। जब कि आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और लाला भगवानदीन के अनुसार पद्माकर का जन्म सागर में हुआ था।

पद्माकर के काव्य में बुन्देलखण्ड की संस्कृति, आचार-विचार, प्रकृति, रीतिरिवाज, तथा जनजीवन का सुन्दर चित्रण मिलता है। पद्माकर धर्मग्रंथों, वेदों और शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। तंत्र और मंत्र विद्या में पद्माकर की विशेष रूचि थी। ग्वालियर के महाराजा दौलतराव सिन्धिया, बांदा के हिम्मतबहादुर और जयपुर के राजा जगतसिंह पद्माकर के आश्रयदाता रहे।

कवि पद्माकर द्वारा लिखे गये ग्रन्थों में हिम्मत बहादुर विरूदावली, प्रताप सिंह विरूदावली, पद्माभरण, आलीजाह प्रकाश, प्रबोध पचासा, गंगालहरी आदि वीर रस में लिखे गये प्रमुख ग्रन्थ हैं। इनकी भाषा ही इन्हें बुंदेलखण्ड एवं बुन्देली का श्रेष्ठ कवि सिद्ध करती है। इनकी रचनाओं में बुन्देलखण्ड के मुहावरे और कहावतों का बड़ा सुन्दर प्रयोग मिलता है। यद्यपि पद्माकर ने वीर रस और श्रृंगार दोनों रसों में साहित्य-ग्रन्थ लिखे हैं पर श्रृंगार रस के लिये पद्माकर को विशिष्ट कवि का स्थान प्राप्त है।

इकाई-4

(1)
जन कवि जगनिक

प्रश्न–1. जनकवि जगनिक द्वारा रचित 'आल्ह–खण्ड' की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

'जनकवि जगनिक के 'आल्हाखण्ड' में शौर्य एवं वीरता का रोमांचक वर्णन मिलता है।' इस कथन की पुष्टि में जगनिक काव्य का विवेचन कीजिये।

अथवा

जगनिक के भावपक्ष और कलापक्ष की विवेचना कीजिये।

अथवा

कवि जगनिक की काव्यकला पर एक निबन्ध लिखिये।

उत्तर– भावपक्ष– जगनिक की विषय-वस्तु अत्यंत सीमित है। उन्होंने आल्ह-खण्ड की रचना की है। कालिंजर के राजा परमार के आश्रित कवि जगनिक ने महोबा के दो प्रतापी देशभक्त वीरों-आल्हा और ऊदल की वीरता का वर्णन एक गीतात्मक काव्य के रूप में 'आल्ह-खण्ड' में लिखा है। इस रचना में युद्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है।

अतः विषय-वस्तु की दृष्टि से आल्ह-खण्ड में निम्नलिखित तत्व हैं-

(1) श्रृंगार वर्णन, (2) युद्ध वर्णन, (3) देश वर्णन, (4) घटना वर्णन।

(1) श्रृंगार वर्णन– श्रृंगार वर्णन के अंतर्गत उन्होंने रानियों के सौन्दर्य, हाव-भाव, चेष्टा इत्यादि का वर्णन किया है जो अत्यंत सटीक है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

रानी तिलका के महलन में, दोनों तुरत गये अरगाय।
हाल सुनायौ सब तिलका कौं, तब रानी ने कही सुनाय।
बारह रानिन कौ इकलौता, है सोरह कौ सबै सिंगार॥
लाखन जै है जो महुबे कौं, तौ हो जै है मौत हमार।
जब लै पूत रहै अनव्याही, तब लौं माता को अधिकार॥
व्याह भये पे अब पत्नी कौं, पति पै होत भलै अख्त्यार।

बेला के व्याह में कवि ने बेला का सटीक श्रृंगारिक वर्णन किया है। आल्ह-खण्ड में विवाह से सम्बन्धित विभिन्न रीति-रिवाजों का भी वर्णन किया है।

(2) युद्ध वर्णन– जगनिक युद्ध वर्णन में अत्यंत पटु थे। उन्होंने कई संग्रामों का जीवन्त वर्णन किया है। युद्ध वर्णन को सुनकर या पढ़कर लोग जोश में आ जाते हैं। कहते हैं कि एक स्थान पर आल्ह-खण्ड सस्वर पढ़ा जा रहा था, उसमें एक पंक्ति थी- 'धिक जीवन है क्षत्रिय कौ, जाका बैरी सम्मुख आय' इसे सुन रहे व्यक्ति का शत्रु भी वहीं बैठा था। उन्होंने जोश में आकर अपने शत्रु का सिर काट दिया। युद्ध वर्णन का एक उदाहरण देखें-

कौन सूरमा जो तुमरे दल, घोड़ा हमसों लेय छुड़ाय।
बाट हमारी रोक न पैहौ, तुम सुन लेव चौड़िया राय॥
दई चुनौती सर संधानी, चौंड़ा बोलो बचन रिसाय।
तुरतै उतर परौ धोड़ा सें, नातर दैहों मार गिराय॥
जागन बोले हरनागर सैं, अब तो बजे सिरोही ढाल।
जग रूठें रूठें रामहु जों चाहे रूठि जाय परमाल॥
उड़न बछेरा तें न रूठियौ, नदी वेतवा के मैदान।
कोड़ा चटकौ, घोड़ा दंदकौ, उठि कें ऊँची भरी उड़ान॥
पिछली टापें धरि गज माथें, अगलीं होंदा धरी जमाय।
ढाल की ओझड़ जगनिक मारी, सोने कलसा दियौ गिराय॥
पहिले मारौ पीलवान कों, चारों हने गुर्जबरदार।

लैकें कलगी फिर चौंड़ा की जगनिक बढ़ चले वा पार॥

(3) **देश वर्णन**– जगनिक ने महोबा, कन्नौज, दिल्ली इत्यादि के युद्ध-स्थलों का अत्यंत सटीक वर्णन किया है। युद्ध की दुर्दशा तथा वहाँ के वातावरण का अत्यंत गंभीर एवं मार्मिक वर्णन कवि ने किया है।

(4) **घटना वर्णन**– युद्ध एवं प्रासंगिक घटनाओं का भी कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। एक प्रसंग का उदाहरण देखें–

चढ़ि कै मल्हना सतखंडा पै, देखी फौज पिथौरा राय।
नीचे उतरीं चिंतातुर हो, और राजा को लियो बुलाय॥
पाती पढ़ि कैं पृथ्वी राज, को उतर लिख्यौ मल्हन दे रानि।
बेटी बेला जब व्याही थी, तब कां हते वीर चौहान॥
सौ तक गिनती एकै गिनती, समधी सुनो पिथौरा राय।
तुम्हें मुनासिब ये नाहीं है, पानी पियौ महोबे आय॥
जा घर व्याही बेटी तुमने, ता घर बाँधि आये तरवार।
तब तुम काहे चढ़ि आये ना, जब थे वैदुल के असवार॥
पंद्रह दिना अवधि के दीजै, सोलह लीजौ डांड़ भराय।
कै मन आपै जूझ मचावैं, दो में एक आंकु रहि जाय॥
कै भर लीजै कै भरि दीजै, लीजै राह आपनी जाय।
लिख परवानौ करौ रवानौ वाचौं जवै पिथौरा राय॥
करि कै सोच-विचार मान लई, विनती वीर पिथौरा राय।

रस-योजना– जगनिक ने मुख्यतः निम्नलिखित रसों का समावेश अपने काव्य में किया है– (1) शान्त रस, (2) श्रृंगार रस, (3) वीर रस, (4) रौद्र रस, (5) भयानक रस, (6) करुण रस।

इनके अतिरिक्त अन्य रसों का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है। रस प्रयोग के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं–

शान्त रस– शान्त रस का वर्णन कई स्थलों पर, घटनाओं में, दरबारों के वर्णन में, सेना के कूच में, वार्तालाप, विवाह आदि अनेक प्रसंगों में शान्त रस का निर्वाह किया गया है।

एक उदाहरण प्रस्तुत है–

सुमिरन करकें नारायण कौं औ गनपति के चरन मनाय।
कहौ मनौआ अब आल्हा कौ शारद मोकौं होहु सहाय॥
सुनिये इन्दल आये द्वार पै, भेंटे सादर गये लिवाय।
राज भवन में जाके पहुँचे, देवल देवी भेंटे जाय॥
कुशलक्षेम पूछी देवल ने, आल्हा पै बाँदी पठवाय।
आये भांजे चंदेले के, जगनिक जगनेरी के राव॥
आल्हा भेंटे जगनायक सों और छाती से लये लगाय।
ऊदल आये भेंटे मिलिकै, सब रानिन सों भयो मिलाप॥
भई रसोई रंगमहल में भई जेवनार भये आलाप।

फिर मिलि बैठे और चली तब महुबे कुसलक्षेम की बात॥

करुण रस– करुण रस का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। युद्ध के बाद का हाहाकार एवं युद्ध में मृत सैनिकों के परिवारों का करुण नाद का वर्णन किया गया है। एक उदाहरण–

तुल तुल पानी महुबे जावें, दुख कौ कछू ठिकानों नाय।
रोवे रैयत चंदेले की हा हम कौन देश भग जायं॥
सेजें छोड़ दईं पुरुषन ने तिरियन तज दये सबै सिंगार।
विपदा पर गई चंदेलन पें, ना घर मण्डलीक औतार॥
पाती लिख भेजी कौं अपने हाथ पिथौरा राय।
डाँड़ पटै हो जो तुरतै ना, तौ महुबे कौ लेय लुटाय॥
अजय कलिंजर किला सौंप देव बैठक दुर्ग ग्वालियर क्यार।
पवन बछेड़ा पारस पथरी, डोला देव चंद्रावलि क्यार॥

वीर रस– आल्ह-खण्ड वीर रस का काव्य गाथा ग्रंथ होने के कारण इसमें वीर रस की प्रधानता है। एक उदाहरण देखिये–

अनी बड़ी उमड़ी घेरा लख, जगनिक मन में कियो विचार।
प्रान बचाकें महुबे लौटे, तौ का जी हैं बरस हजार॥
स्वामी के कारण तन दै हैं साका करें तरें संसार।
प्रान हथेरी पै धर जगनिक, बोले वीर बचन ललकार॥
कौन सूरमा जो तुमरे दल, घोड़ा हमसों लेय छुड़ाय।
बाट हमारी रोक न पैहो, तुम सुन लेव चौंड़िया राय॥
दई चुनौती सर संधानी, चौंड़ा बोलौ बचन रिसाय।
तुरतै उतर परौ घोड़ा सैं नातर दैहों मार गिराय॥

रौद्र रस–

जागन बोले हरनागर सैं अब तो बजे सिरोही ढाल।
जग रूठै रूठैं रामहु जों चाहे रूठि जायँ परमाल॥
उड़न बछेरा तैं न रूठियौ, नदी वेतवा के मैदान।
कोड़ा चटको, घोड़ा दँदको, उठिकें ऊँची भरी उड़ान॥
पिछली टापें धरि गज माथैं, अगली हौंदा धरी जमाय।
ढाल की ओझड़ जगनिक मारी सोने कलसा दियो गिराय॥
पहले मारौ पीलवान कौं चारों हने गुर्जबरदार।
लैकें कलगी फिर चौंड़ा की जगनिक बढ़ चले वा पार॥
घोड़ा बढ़ायौ ज्यों ही आँगे, त्यों ही धाँधू दई ललकार।
जगनिक घोड़ा तिरछी हाँको, निकरि गये नदिया ऊ पार॥

भयानक एवं वीभत्स रस–

इंद्र डोल जाँय इंद्रासन सैं, औ शिव डोल जाँय कैलास।
लाखन डोलन के नाहीं हैं, जो लौं तन में रैहैं साँस॥
माय सपथ माता तिलका की पितु जयचंद के रक्त न हँऊ।

कटि कटि मांस गिरै धरनी पै, पैन धरौं पिछारू पाँउ॥

कलापक्ष– जगनिक की भाषा एक बंधी–बंधाई सपाट बुन्देली भाषा है। अपनी रचना में उन्होंने ठेठ बुन्देली का प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से प्रसंगानुसार कठोर, मार्मिक एवं कोमल शब्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा में पुरुष शब्दों की बहुलता और युद्ध वर्णन में ओजस्वी भाषा का प्रयोग हुआ है। वीरतासूचक शब्द जैसे खटाखट, औझड़ आदि का प्रयोग हुआ है। भाषा में अमिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों शब्द–शक्तियों का प्रयोग है। मुहावरे, लोकोक्ति, एवं कहावतों का प्रसंगानुसार प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। भाषा में लय, गति, और नाद का भी ध्यान रखा गया है। प्रयोग देखें–

चढ़ी पालकी मल्हना रानी, जगनेरी में पहुँची जाय।
गऔ हर कारा जगनायक पै, और जगनिक सौं कही सुनाय॥
मल्हना आई दरवाजे पै जल्दी चलौ हमारे साथ।
जगनिक आये दौर द्वार पै, मल्हना छाती लियो लगाय॥
रो रो मल्हना बात सुनाई, हम पै चढ़े पिथौरा राय।
नगर महोबा उन घिरवा लऔ फाटक बंद दये करवाय॥

ध्वनि एवं नाद से युक्त खनकदार भाषा का उदाहरण देखिये–

इतनीं सुन तै लै लाखन कों, चलिगे बेंदुल के असवार।
लाखन चढ़ि गये सतखण्डा पै जहां पै हती पदमनी नार॥
तिरछै नैननि निरखि छबीलों कुसुमा बात कही मुसुकाय।
कौन हेत दिन में आये हो, सो तुम हमें देउ बतलाय॥
पृथ्वीराज दिल्ली के राजा दिखा लयौ महोबा ठाँव।
संगै जैहैं हम ऊदल के, अपने भरन पुराने दाँव॥

ओजस्वी एवं ओजपूर्ण भाषा का उदाहरण देखें–

पांव पिछारू ना धरियो तुम, नहीं क्षत्रियन जाय नसाय।
जो सुनि नौहों भगे ककौजो, तौ मैं पेट फारि मरि जाँऊ॥
सम्मुख रण में जो जूझेंगे लैकें साथ सती हो जाँऊ।
इतनी सुनि हँसि लाखन बोले रानी वचन करौ परमान॥

शैलियाँ– जगनिक ने निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग किया है– (1) रागात्मक शैली, (2) विवरणात्मक शैली, (3) भावात्मक शैली, (4) व्याख्यात्मक शैली, (5) व्यंग्यात्मक शैली (6) चित्रात्मक शैली।

आल्ह–खण्ड की प्रचलित शैली और छन्द में उन्होंने आल्ह–खण्ड की रचना की है। ये गेय एवं लयात्मक, मधुर एवं नादात्मक है।

अलंकार योजना– जगनिक ने बहुत कम अलंकारों का प्रयोग किया है, लेकिन जो भी अलंकारों का प्रयोग किया है वह अत्यंत स्वाभाविक एवं सहज हैं। उन्होंने प्रमुख रूप से उपमा, रूपक, वीप्सा, अनुप्रास, (छेकानुप्रास) यमक श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। कहीं–कहीं विरोधाभास का भी प्रयोग किया है।

अलंकारों के कुछ उदाहरण– अनुप्रास–

बिलखि बिलखि चंद्रावलि, लिखती बीरन वेंदुल के असवार।
आन राखियौ चंदेले की, तुम बिन कौन सकै निरवार॥
पत राखौ मल्हना माता की, और राखियौ धरम हमार।
पत गयैं फिर पानी ढर जैहैं, बिन पानी जीवन धिरकार॥

रूपक अलंकार–

इतनी सुनतै लै लाखन कों, चलिगे बेंदुल के असवार।
लाखन चढ़ि गये सतखण्डा पै, जहाँ पै हती पदमनी नार॥
तिरछै नैननि निरखि छवीलों, कुसमा बात कही मुसुकाय।
कौन हेत दिन में आये हो, सो तुम हमें देउ बतलाय॥
पृथ्वी राज दिल्ली के राजा दिखा लयौ महोबा ठाँव।
संगै जैहैं हम ऊदल के, अपने भरन पुराने दाँव॥

विरोधाभास एवं छेकानुप्रासास अलंकार–

इंद्र डोल जाँय इंद्रासन सै, औ शिव डोल जाँय कैलास।
लाखन डोलन के नाहीं हैं, जो लौं तन में रैहैं साँस॥
माय समथ माता तिलका की पितु जयचंद के रक्त न हउ।
कटि–कटि माँस गिरै धरनी पैं, पै न धरौं पिछारू पाँव॥
धीरज दै समुझाई कुसुमा लाखन अव विलमाऔ नाँय।
करि है हंसी पत देवल को, बिछुरै देव मिलैहै आय॥
रो रो मल्हना बात सुनाई, हम पै चढ़े पिथौरा राय।
नगर महोबा उन धिखा लयौ, फाटक बंद दये करवाय॥

क्रमालंकार एवं अन्त्यानुप्रास–

पहले डंका में जिनबंदी दूजे वांध लये हथयार।
तीजे डंका के बाजत खन क्षत्री फांद भये असवार॥
हाथी चढ़ैया हाथिन चढ़ि गये, वाँके घोड़न के असवार।
कोऊ नालकिन, कोऊ पालकिन, कोऊ गजरथ भये सवार॥

प्रश्न–2. जनकवि जगनिक द्वारा रचित 'आल्ह–खण्ड' की ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– जगनिक कलिंजर के राजा परमार के आश्रित दरबारी कवि थे, लेकिन कवि होने के साथ–साथ जगनिक वीर और योद्धा भी थे। उन्होंने स्वयं कई लड़ाईयों में वीरतापूर्वक भाग लिया था।

आदिकाल में बुन्देलखण्ड भू–भाग में छोटे–छोटे राजाओं के राज्य थे। उस समय के राजाओं की दो समस्यायें विशेष रूप से थीं। पहली समस्या थी बाहरी आक्रमणों से अपने राज्य की रक्षा करना और दूसरी अपने राज्य की सीमा को बढ़ाना। दोनों बातों का मूल उद्देश्य था हमेशा युद्ध के लिये तैयार रहना। इस वातावरण का उस समय के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव पड़ा।

उस समय की सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करने हेतु निम्न बिन्दुओं पर विचार करना उचित होगा–

(i) राष्ट्रभक्ति की भावना– उस समय छोटे–छोटे राजा और सामन्त मुगलों की सत्ता से स्वतंत्र होना चाहते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयासों को तेज करने में सभी राजा और उनकी प्रजा प्रयत्नशील रहा करते थे। उस समय के समाज में देशभक्ति की भावना कूट–कूट कर भरी थी। वीरतापूर्ण कृत्य को प्रशंसात्मक दृष्टि से देखा जाता था।

(ii) गौरव गाथा– बुन्देलखण्ड के अतीत का गुणगान करने वाली घटनाओं को सुनकर लोगों में जोश भर जाता था। ऐसी गौरव गाथायें समाज में अपनी मातृभूमि के लिये बलिदान देने के लिये प्रेरित करती थीं। आल्ह–खण्ड नामक ग्रंथ ने राजा और प्रजा दोनों को अपने देश की रक्षा हेतु प्रेरित किया।

(iii) स्वाभिमान व समर्पण की भावना– उस समय के बुन्देलखण्ड के समाज में अपने मान–सम्मान एवं स्वाभिमान की रक्षा हेतु अपने प्राणों को न्यौछावर करने की भावना पाई जाती थी। यदि आत्म–सम्मान चला गया तो समझो जीवन को धिक्कार है, इस प्रकार की भावना प्रबल थी। जगनिक द्वारा रचित आल्ह–खण्ड से इस प्रकार की वीरतापूर्ण भावना को बल मिलता है। उस समय के समाज में आल्हा, ऊदल और मलखान जैसे वीरों के अपने आश्रयदाता के प्रति समर्पण की भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

(iv) वचनबद्धता– बुन्देलखण्ड के प्राचीन समाज में जिन वीरों की युद्ध कथा का वर्णन मिलता है, उनसे पता चलता है कि उस समय के समाज में अपने वचन के पालन में लोग कितने अटल थे। अपनी बात रखने के लिये लोग अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिये तैयार रहते थे। सिर भले ही कट जाय पर अपने वचन से पीछे हटना नहीं जानते थे।

(v) राजनैतिक परिवेश– बाहरी हमलावरों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों ने हिन्दू राजाओं के मन में मुगलों और दूसरे मुसलमान हमलावरों के प्रति विद्रोह की भावना बढ़ती चली गई। विभिन्न क्षेत्रों में हमेशा आक्रमण का भय बना रहता था। हिन्दुओं पर अत्याचार और धार्मिक प्रतिष्ठानों की पवित्रता भंग किये जाने की आशंका बनी रहती थी। बुन्देलखण्ड में ओरछा के राजा छत्रसाल जैसे वीरों ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये अपना झंडा बुलन्द कर रखा था। ऐसे ही वीरों की गाथाओं पर आधारित आल्ह –खण्ड की रचना ऐसे ही वातावरण में जगनिक ने की जिसके प्रभाव से हिन्दू धर्म की रक्षा में पूरा योगदान दिया।

(vi) सांस्कृतिक परिस्थितियाँ– बुन्देलखण्ड के संतों और मनीषियों ने हिन्दू समाज को शक्तिशाली बनाने के लिये एक ऐसा जीवनदर्शन दिया जिसमें पूजापाठ, जप, तप, व्रत, नियम, उपासना आदि का विशेष स्थान रहा। यही कारण है कि बुन्देलखण्ड की मूल संस्कृति का ह्रास आज तक नहीं हो पाया। ऐसी सांस्कृतिक धरोहर को और मजबूत बनाये रखने में जगनिक द्वारा रचित 'आल्हाखण्ड' ग्रंथ ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

(2)
ईसुरी

प्रश्न–3. 'ईसुरी बुन्देली के मानक कवि थे।' संक्षेप में अपने विचार प्रकट कीजिये।

उत्तर– ईसुरी बुन्देली के प्रतिभा सम्पन्न श्रेष्ठ कवि थे। उनमें आशु काव्य प्रवृत्ति असाधारण थी। उनकी इस अद्वितीय प्रतिभा के कारण ईसुरी को बुन्देली भाषा का मानक कवि कहा जाता है।

भाषा– उनके द्वारा रचित काव्य की भाषा लोक भाषा थी। बुन्देलखण्ड में जनसाधारण जिस भाषा को बोलता है, उसी सामान्य भाषा में ईसुरी का बुन्देली साहित्य मिलता है। इनके साहित्य में किसी अन्य भाषा या शब्दों का मिश्रण नहीं पाया जाता। ईसुरी की इतनी प्रसिद्धि का कारण उनके द्वारा प्रयुक्त बुन्देली भाषा ही है। शब्दों की सरलता और भाषा की मिठास बुन्देली का सबसे बड़ा गुण है।

अपनी प्रेरणा रजऊ के विषय में लिखी पंक्तियों में शब्दों की सरलता देखते ही बनती है–

"हो गऔ संग हमारौ तेरौ, प्यारी मुख न फेरौ।
ईसुरी जौ मन पुरो हो गऔ, रजऊ तुम्हारौ चेरौ॥"

ईसुरी द्वारा रचित बुन्देली फागें पढ़ने वाले श्रोताओं को भाषा में अपनापन और आंचलिकता की अनुभूति होती है वह अन्य भाषाओं में नहीं होती। केवल ब्रज भाषा में ही यह गुण पाया जाता है। अतः हम ईसुरी को बुन्देली भाषा का मानक कवि कह सकते हैं।

प्रश्न–4. ईसुरी साहित्य के कला पक्ष एवं भाव पक्ष पर प्रकाश डालिये।

अथवा

ईसुरी की काव्य कला की सोदाहरण समीक्षा कीजिये।

अथवा

'ईसुरी के काव्य की मूल प्रेरणा 'रजऊ' मानी जाती है।' इस कथन के सन्दर्भ में ईसुरी फाग साहित्य का विश्लेषण कीजिये।

अथवा

ईसुरी की काव्यगत विशेषतायें लिखिये।

अथवा

ईसुरी के श्रृंगारपरक फागों पर एक निबन्ध लिखिये।

उत्तर– बुन्देली साहित्य के अमर गायक श्री ईसुरी बुन्देली के प्रतिनिधि कवि हैं। ईसुरी ने अपने साहित्य में श्रृंगार और भक्ति का अनूठा समन्वय किया है।

(1) **वर्णन शैली–** कविवर ईसुरी ने अपनी फागों में अलग–अलग स्थितियों का जो वर्णन किया है उसमें शब्दों की सादगी भी एक विशिष्टता लिये हुये है। चाहे वह श्रृंगारिक वर्णन हो और चाहे लोक जीवनपरक फागें हों, उन्होंने लोक भाषा में जो वर्णन एवं चित्रण किया है वह जन–सामान्य के दिमाग में इतनी गहराई से बैठता है कि श्रोता का मन प्रफुल्लित हुये बिना नहीं रहता। श्रृंगारिक वर्णन में तो ईसुरी पूरी तरह सिद्धहस्त हैं। उदाहरणस्वरूप उनकी श्रृंगारिक फाग का अंश देखिये–

गोला मौं पै पटियां पारें, सुन्दर मांग संमारें।
मानो स्वच्छ चन्द्र के ऊपर कागा पंख पसारें।

(2) **विरह व्यंजना**– कविवर ईसुरी के जीवन–परिचय से स्पष्ट है कि उनका जीवन सदा अभावपूर्ण रहा है। घूमते–घामते एक ग्राम में उन्हें एक सुन्दर महिला 'रजऊ' से सम्पर्क होता है। ईसुरी उसके मोह–पाश में आ गये और उसके सम्बन्ध में कई फागें लिखीं। पर जब उससे विछोह हुआ तो रजऊ उनकी प्रेरणा–स्रोत बन गई। लेकिन जब विछोह हुआ तो विरह में ऐसी फागों की रचना की जो ईसुरी के लिये सबसे बड़ा सम्बल बन गई। ये विरह व्यंजना ईसुर की सबसे बड़ी पहचान बन गई। यथा–

जब से भई प्रीत की पीरा सुखीं नईं जौ जीरा।
कूरा माटी मऊँ फिरत है इतै–उतै मन हीरा।
कमती आगई रकत मांस की वहौ द्रगन सें नीरा।
फूकत जात विरह की आगी, सूकत जात सरीरा।
टेई नीम में मानत 'ईसुर' और नीम कौ कीरा।

(3) **प्रकृति वर्णन**– ईसुरी द्वारा रचित प्रकृतिपरक फागें बुन्देली में अपना अलग ही स्थान रखती हैं। उनका एक अलंकारात्मक प्रकृति चित्रण का अवलोकन कीजिये–

अब रित आई बसंत बहारन, पान फूल फल डारन।
बागन बनन बगलन बेलन, बीथीं बगर बजारन॥

(4) **भक्ति भाव**– श्रृंगारिक फागों का वर्णन करते–करते ईसुरी की काव्य यात्रा विरह साहित्य से होती हुई भक्ति भावना पर आकर ठहरती है। ईसुरी ने अपनी फागो में भक्ति भावना का जो साहित्य सृजन किया है, वह बेजोड़ है। बुन्देली के लोक मानस के प्रचलित शब्दों से भक्तिपरक फागें ईसुरी की भक्ति भावना को उजागर करती हैं। उदाहरण देखिये–

चल मन ब्रिन्द्रावन में रइये, कृस्न राधिका कइये।
झाड़ूदार होय गोकुल के, गैलें साफ करइये।
जे दोरे देवतन खां हुरलभ, तिनें बुहारू दइये।
बचे खुचे ब्रजजन के टूंका, मांग–मांग के खइये।
'ईसुर' कअत दरस के लानें, का–का मजा दिखइये॥

(5) **लोक भावना**– ईसुरी ने अपने समय के लोक–मानस की भावनाओं को अपने द्वारा रचित साहित्य में उचित स्थान दिया है। उन्होंने लोकोक्तिपरक फागों की रचना कर उस समय के लोक–मानस को उजागर किया है। लोक भावना को उजागर करता फाग का एक अंश देखिये–

बैठी बीच बजार तमोलन, पान धरे अनमोलन।
रम्म रीत में गाहक टेरैं, बोलें मीठे बोलन।
प्यारी गूद लगै टिपकारी, गोरे बदन कपोलन।
खैर सुपारी चूना धरकें, बीरा देय हंतेलन।
'ईसुर' होंस रओ ना हंसतन, कैउ जनन के चोलन॥

(6) **श्रृंगारपरक रचनाओं** में दोनों प्रकार के श्रृंगार संयोग एवं वियोग पक्ष की रचनायें संयोग में राधिका या नायिका सौन्दर्य, हाव–भाव, हेला के अनेक चित्रण हैं। सौन्दर्य का एक रमणीय चित्रण देखें–

लख तव नैनन की अरुनाई, रहे सरोज छिपाई।
मृग सिसु निज अलिभय खाँ तजकें, बसे दूर बन जाई।
चंचल अधिक मीन खंजन से, उनई न उपमा पाई।
ईसुरी इनकी कौनों बरनों नयनन सुन्दरताई॥

क्या अद्भुत सौन्दर्य है उसके नैनों की लालिमा के भय से कमल तालाब में जा छिपा। मृग, भंवरे दूर भाग गये, मीन खंजन से अधिक चंचल नयनों की तो उपमा ही नहीं देते बनती। वियोग आँखें अब जाग रही हैं यथा–

अंखियाँ जब काऊ से लगतीं सब–सब रातन जगतीं।
झपती नहीं झींम ना आवै, काँ उसनींदें भगतीं।
बिन देखें से दरद दिवानी, के खता सीं दगतीं।
ऐसो हाल होत हे ईसुर पलक न पलतर दबतीं॥

(7) प्रकृतिपरक फागों में बसंत एवं सभी ऋतुओं, बाग–बाटिका एवं वियोग में मदन, कोकिला, चातक इत्यादि व्यथित करते हैं– बसन्त का एक चित्र देखें–

अब रित आई बसन्त बहारन, पान फूल फल डारन।
बागन बनन वँगलन बेलन, बीथी बगर बजारन।
हारन हद्द, पहारन, पारन, धवल धाम जल धारन।
कपटी कुटिल कंदरन छाई गई बैराग विगारन।
ईसुर कंत अंत घर जिनके, तिनें देत दुःख दारुन॥

वर्षा का चित्र देखें–

बदर मदन भूप दल दावै, विरहिन के घर आवैं।
जिनके संग नकीब कोकिला, ललित अवाज लगावैं।
चातक चतुर अलापत ढाँड़, पिया–पिया जय गावै।
बूदें नईं तीर सी 'ईसुर' रात–दिना बरसावैं॥

(8) **रस योजना**– चूँकि ईसुरी प्रसाद ने प्रमुख रूप से श्रृंगार का ही वर्णन किया है फिर भी उनकी रचनाओं में निम्नलिखित रसों का समावेश हुआ है–

(i) शान्त रस, (ii) वात्सल्य रस, (iii) श्रृंगार रस, (iv) हास्य रस, (v) करुण रस।

अन्य रस जैसे वीर, रौद्र, वीभत्स, भयानक इत्यादि का अभाव है– एकाध स्थल पर इनके उदाहरण मिल सकते हैं।

शान्त रस प्रमुखतः विनय एवं भक्तिपरक, नीतिपरक, ऋतु वर्णन एवं प्रकृतिपरक तथा लोक जीवनपरक रचनाओं में निहित है। एक उदाहरण देखें–

तन कौ तनक भरोसो नइयाँ, राखै लाज गुसइयाँ।
तरबर पत्र गिरत धरनी में, फिर न लगत डरइयाँ।
जर बर देह मिलै माटी में, फिर ना चुनें चिरइयाँ।
ईसुर देही काम ना आवै, पसु की बनत पनइयाँ।
हंसा उड़ चल देस विराने, सरवर जात सुखानें।
इतै रमें की कौन भलाई, जितै बकन के थानें।

समुद भरे हैं अगम उतै चल, सुख पावै मनमानें।
बचत बने तो बचो ईसुरी, तानें काल कमानें॥

श्रृंगार रस– श्रृंगार रस के दोनों पक्ष संयोग एवं वियोग सम्बन्धी सैकड़ों रचनायें हैं। उनमें नायिका के सौन्दर्य, अंग–भंगिमा, होली खेलना, छेड़–छाड़, उमंग, हाव–भाव, हेला के अनेक चित्र उपलब्ध हैं। वियोग पक्ष की वेदना, पीड़ा, प्रकृति का आलंबन उद्दीपन सभी रूप अत्यंत मनमोहक हैं। सौन्दर्य का चित्रण देखें–

सोभा रजक की कीसों करिये, कियै उनारन जइये।
बड़कें चीज इकीसई सोनों, ईखाँ का परखइये।
दरस दच्छना मिलत भाग से, इकटक देखत रइये।
साजी फागें कई 'ईसुरी' सुगर सुनइया चइये॥

विप्रलंभ श्रृंगार के अनेक उदाहरण हैं यथा–

'ईसुर' होंस रओ ना हँसतन कैउ जनन के चोलन।
हम पै नाहक रँग डारौ, घरें न प्रीतम प्यारौ।
फीकी फाग लगत बालम बिन, मन में तुमईं विचारौ।
अतर गुलाब अबीर न छिरकौ, पिचकारी ना मारौ।
'ईसुर' सूजत प्रानपती बिन, मोय जग में अँदयारौ॥

कला पक्ष– भाषा एवं शैली– ईसुरी प्रसाद की भाषा अत्यंत मार्मिक, रोचक, एवं अलंकृत है। उनकी पदावली अत्यंत कोमलकांत, रमणीय है उसमें नाद, लय एवं ध्वनि अत्यंत आकर्षक है। भाषा में सहज में ही अनेक लोकोक्ति, कहावत और मुहावरों का प्रयोग हुआ है। शब्द चयन अत्यंत मधुर, कोमल एवं प्रसंगानुकूल है। उनकी भाषा में व्यंजना की बहुलता है! अभिधा एवं लक्षणा शब्द–शक्ति का भी प्रचुर प्रयोग है। भाव एवं अर्थ सबलता है। भाषा, भाव प्रसंगानुकूल है। उसमें पुरुष या कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं है। काव्य की पूर्ण रसानुभूति कराने में भाषा सक्षम है। ध्वनि–नाद सरलता का उदाहरण प्रस्तुत है–

नइयाँ ठीक जिन्दगानी कौ, बनौ पिण्ड पानी कौ।
चोला और दूसरो नइयाँ, मानुस की सानी कौ।
जोगी जती संन्यासी, का राजा रानी कौ।
जब चायें लै लेबैं 'ईसुर' का बस है प्रानी कौ॥

ध्वनि, नाद, एवं शब्द चयन का एक और उदाहरण–

अब रित आई बसंत बहारन पान फूल फल डारन।
बागन–बनन बेलन बीथी बगर बजारन।
हारन हद्द पहारन पारन धवल धाम जल धारण।
जब से भई प्रीत की पीरा, सुखी नहीं जौ जीरा।
कूरा माटी भऔ फिरत है, इतै–उतै मन हीरा।
कमती आ गई रकत माँस की, बहौ दृगन से नीरा।
फूँकत जात विरह की आगी, सूकत जात सरीरा।

टोइ नीम में मानत 'ईसुर' ओई नीम कौ कीरा॥

शैली– ईसुरी ने निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग किया है– (1) रागात्मक शैली, (2) वर्णनात्मक शैली, (3) चित्रात्मक शैली, (4) व्यंग्यात्मक शैली, (5) भावात्मक शैली।

उनकी शैली अत्यंत रोचक एवं भावुक है। छन्द भी अत्यंत मधुर हैं। अलंकृत शैली में रची फागें अत्यंत मोहक एवं आकर्षक हैं, वे हृदय का स्पर्श करती हैं। वे पाठक को भाव–विभोर कर देती हैं। उनमें श्रृंगार है, विरह है, सौन्दर्य है, भाव–भंगिमायें, होली का हास्य, हुड़दंग, और छेड़छाड़ है। होली के चित्रण इतने चित्ताकर्षक हैं कि साक्षात होली के दृश्य प्रस्तुत कर देते हैं।

अलंकार योजना– ईसुरी के काव्य में अलंकार योजना अत्यंत सशक्त है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक, श्लेष, वीप्सा, अनुप्रास, अतिश्योक्ति, अर्थान्तर न्याय, व्यतिरेक, निदर्शन आदि अलंकारों का प्रयोग है। यह सहज एवं स्वाभाविक रूप से उनके काव्य को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं।

(3)
संतोष सिंह बुन्देला

प्रश्न–5. संतोष सिंह बुन्देला की साहित्यिक विशेषतायें लिखिये।

अथवा

संतोष सिंह बुन्देला की भाषा–शैली, रस अलंकार आदि पर एक निबन्ध लिखिये।

अथवा

संतोष सिंह बुन्देला के भावपक्ष और कलापक्ष का विवेचन कीजिये।

अथवा

'संतोष सिंह 'बुन्देला' मंचीय कवि के रूप में सामदृत थे।' इस कथन के पक्ष में उनके काव्य वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिये।

अथवा

लोक भाषा के सन्दर्भ में संतोष सिंह बुन्देला की काव्यगत विशेषतायें लिखिये।

अथवा

संतोष सिंह 'बुन्देला' के काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– संतोष सिंह बुन्देला–बुन्देलखण्ड के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। वे एक सुलझे हुये गीतकार हैं। उन्होंने दीन, दरिद्र कृषकों को लेकर अनेक कवितायें लिखीं। वे अच्छे गीतकार हैं। उनकी आलोचना के लिये दो बिन्दुओं पर विचार करना होगा– (1) भाव पक्ष, (2) कला पक्ष।

(1) भाव पक्ष– विषय–वस्तु– उनकी विषय–वस्तु आयामी है। उनके काव्य को हम निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं–

(1) गीत
(2) लोक गीत की विषय–वस्तु– ग्रामीण परिवेश, प्रकृति, रीति–रिवाज, खान–पान आदि।
(3) अन्य कवितायें।

वस्तु योजना इस प्रकार है– उनके गीतों के बारे में संपादक के विचार देखें–

उनके गीतों को भाषा या छन्द शास्त्र की कसौटी पर कसने से समीक्षक विद्वानों को निश्चित रूप से शिकायत होगी लेकिन वे कहते थे कि मैं भावों को महत्व देता हूँ, किसी शास्त्र को नहीं। जिनके लिये और जिनकी भाषा में, मैं अपने गीतों की रचना करता हूँ वे शास्त्र बन्धनों से ऊपर हैं। जनता की बात, जनता की भाषा में। पं. कृष्ण कवि ने अपनी पुस्तक में कवि की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त करते हुये उन्होंने लिखा है कि– 'संसार भले ही भाषा–भाषा चिल्लाता रहे, लेखक ने गोस्वामी जी की सूक्ति को हृदयंगम कर कार्य किया'– यथा– 'गिरा ग्राम्य सियाराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान।' तथा 'भक्ति भदेस वस्तु भल करनी' और भाषा का संस्कृत भाव चाहिये साँव। 'ग्रामीण बोलचाल की भाषा बहुत मधुर होती है।' बुन्देला जी के लोक गीतों की भाषा यही बोलचाल की ग्रामीण मधुर भाषा है जो शास्त्रीय नियमों के प्रति चिन्तित नहीं है।

उनके लोक गीत मुख्यतः ग्रामीण परिवेश प्रकृति, रीति–रिवाज, खान–पान, जीवन और भाव–संसार से गहराई से जुड़े हैं। ठेठ बुन्देली में रचित अपने गीतों को उन्होंने अपने स्वर, शैली और लय से ऐसा प्रभावी रूप दिया कि सुघड़ होकर लोगों के लोकप्रिय गीत बन गये। ग्रामीण पात्र, ग्रामीण संस्कार, ग्रामीण संसार ये लोक गीत पारंपरिक लोक गीत अथवा अन्य बुन्देली गीतों से अपनी विशिष्ट रचना शैली के कारण अलग हैं। मात्रा, तुकबन्दी, पंक्ति, उतार–चढ़ाव सभी में स्वच्छन्दता है। उनमें प्रकृति है, श्रृंगार है, करुणा, व्यंग्य और यथार्थ के प्रभावी भाव–दृश्य भी। शोषण, गरीबी, अभाव, फैशन, धर्म–कर्म, भाग्य, सहनशीलता, रीति–रिवाज, हर्ष–विषाद, नाच–गान, वाद्य, ममता सभी कुछ को उन्होंने गीतों में समेटा है। इसके साथ ही आज के शहरी जीवन की विद्रूपताओं का चित्रण करते हुये उन पर खासा प्रहार भी किया है। उनके गीतों के संबंध में पं. कृष्ण कवि की लिखी पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं। उन्होंने उनके गीतों को नवरसों से परिपूर्ण मधुर गीत कहा है–

गीतकार नव निपुण मधुर ध्वनि मधुरी वानी।
सरस भ्रमर गुंजार पुहुप सौरभ सुख दानी।
गायक परम प्रवीण राग पंचम सुर गावें।
सुन जनता चहुं ओर दन्य कहुं बहुरि कहावें।
रंग–ढंग सुठि सौम्य तनु कृष्ण सुकवि मोदित खरे।
संतोष सिंह बुन्देला के गीत मधुर नवरस भरे।

ग्रामीण चित्रण करते हुये बुन्देला जी ने अपने गीत में लिखा है–

कहीं पर सारंगा कौ संग, कहीं भारत कौ छिड़ौ प्रसंग,
कहीं पर जेहि सुमिरत सिध होय, कहीं पर केवट के संवाद
कहीं पर हो रये भरत मिलाप
हो दद्दा आजारे। हो व्यारी करजा रे।

उनके 'रमटेरा की तान' और 'मिठउवा कुआ कौ नीर' जैसे कुछ गीत बड़े लोकप्रिय हुये। हर सम्मेलन में श्रोताओं द्वारा उनकी फरमाइश की जाती। रमटेरा की तान में दिवारी, बसंत, होरी, चैत्र बिलवाई, बरसात, विवाह, आदि का सुन्दर चित्रण किया गया है। गीत की कुछ पंक्तियाँ देखिये–

हमारे रमटेरा की तान, समझ लो तीरथ कौ प्रस्थान
जात हैं बूढ़े, बालै, ज्वान, जहाँ पै लाल ध्वजा फहरायँ।
नग–नग देह फरकवै भइया जौं दिवारी गायँ।
दिवारी आई है। उमंगै लाई है।
आन लगै दिन ललित बसन्ती फाग काउ नै गाई।
ढुलक नगड़िया बजी समझलौ कै अब होरी आई।
बजाबैं झाँजैं, झेला, चंग
नचत नर–नारी मिलकर संग
रंगे तन रंग गये हैं मन रंग, कहरवा जब रम सइँया गाय।
पतरी कमर बूँदा वारी, सपनन मोय दिखाय।
अ र र र र होरी है
स र र र र होरी है।

गाँव के गरीब किसान की समस्याओं और चिन्ताओं का अन्त नहीं है। फागुन का महीना, फसल खेत में तैयार खड़ी और आसमान पर बादलों की गर्जना। वर्षा की आशंका, विनाश की संभावना उसे परेशान कर देती है। इस परेशान किसान के मनोभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण बड़ा स्वाभाविक बन पड़ा है।

किसान सोचता है–

साल भरे लौं छाती मारी, तब जा फसल दिखानी,
अब जाने का राम करइयाँ, जा होनी मड़रानी,
अँगा रम कुइँया को व्याव,
धरौ छितिया कौ अवै चलाब,
काल पैसा माँगत तै साब कात तै अवै न दैवै दाम,
तिहाई माँगत हल्कादार, अभय कै आव हतौ कुटवार।
मुसीबत आई है,
न पल्ले पाई है।

किसान और भी चिन्तित है–

साल भरे सैं ज्यादा हौ गऔ, वनौं न मोय सलूका।
तौरी धुतियन कै जौरा कै, हो गये टूँका टूँका॥
फिरत ढींडा सौ भइया लाल,
हियै में जौ दुखड़ा रऔ साल,
भयै काँटन सै पाँव विहाल, हमारे हाथन एक छिदाम
कडौरे चढ़ी परो से ताप, रहौ विजना सौ थर–थर काँप।
डवरियौं भर आईं घटायैं फिर आईं।

गाँव और शहरों के जीवन में बड़ी विषमता है। गाँव के लोग उत्पादन करते हैं और शहरी लोग उसका उपभोग करते हैं। इसके बाद भी ग्रामीणों को पिछड़ा हुआ, अज्ञानी, मूर्ख, गँवार कहा जाता है। बुन्देला जी ने इसका तथ्यात्मक, तुलनात्मक चित्रण किया है–

हम हैं दुखिया दीन गमैयाँ, जिनकौ कोउ जगत में नैयाँ।
देखो बाबू जी हम तन से औ, तुम मन से काले,
इतने से अंतर पै तुम खाँ हम देहाती सालैं।
पड़ौसी कौ सुख-दुख जिन मान देत हैं एक दूजे पै जान,
हमाये नइयै स्वार्थ प्रधान, शहर में को की कौ साथी,
पड़ौसी कौ मर जावे बाप, रेडियो खोले बैठे आप,
गरब जी को तुम खाँ, बुरओ ऊ है हम खाँ।
मंदिर छोड़ क्लब को जावैं, शहर के लोग लुगाई,
चरणामृत छोड़ौ, दारू में झूमत परै दिखाई,
लाज शरम सब विदा गई इनके सुन्दर चेहरन से।
राम बचाये इन शहरन से।

(2) **रस योजना–** जिन रसों का समायोजन अपने गीतों में बुन्देला जी ने किया है, उनमें प्रमुख रस इस प्रकार हैं–

(1) श्रृंगार, (2) करुण, (3) हास्य व्यंग्य, (4) शान्त, (5) अन्य।

श्रृंगार रस– उन्होंने अपने गीतों में श्रृंगार के दोनों पक्षों का समावेश किया है। बुन्देलखण्ड के गाँवों के त्यौहारों, रीति-रिवाजों, दैनिक कार्यक्रमों आदि के वर्णन में श्रृंगार के दोनों रूप दिखाई देते हैं। ये यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। एक उदाहरण देखिये–

नचत नर-नारी मिलकर संग
रंगे तन रंग गये हैं मन रंग, कहरबा जब रमसइया गाय।
पतरी कमर बूँदा बारी, सपनन मोय दिखाय।
अ र र र र होरी है
स र र र र होरी है।

विप्रलंभ श्रृंगार–

बरसन लागे कारे बदरा आन लगौ चौमासौ।
बाबुल के घर दूर बसत हैं, जी में लगौ घुनासौ॥
उमड़ौ भाई बहन कौ प्यार
कि बिटिया छाँड़ चली ससुराल।

करूण रस–

कि मामा लै कै आये भात,
बराती हो गये सकल सनात
विदा की बेला नीर बहाँय
छूट चले बाबुल तोरे आंगन, दूर परी हौं जाय॥
खबर मोरी लैयरईयौ
भूल मोय न जईयौ।

विप्रलंभ श्रृंगार और करूण रस का मिला-जुला रूप देखें इस उदाहरण में–

आज मोरे करम गजब हुइगा रै,

सन्जा भई जलाये दीपक घर कौ अंधियारौ भग जावै।
बिहरन कौ मान जलै रात दिन, लेकिन पल भर चैन ना पावै
कुकरा बोलन लगौ, चकोरी नैनन नीर बहाय।
दिन काटै संजा कै आहै, रातें कटी धौर की आशा।
एक मिलन कै हेत, अबैलौं हिलगी रई मोरी स्वाँस।
दीप शिखा से पहलै जइऔ, जीवन जोत बुझाय।
आज मोरे.....

हास्य व्यंग्य– हम का जानें सौहन हलुआ, मोहन भोग मलाई,
अधर दुपर लों जो मिल जावै, रूखी सूखी खाई।
चटक मटक हम खाँ न भावै, सीधे-सीधे रात हैं,
अधनंगी पोसाकें छी छी हम खों नईं पुसात हैं।
सादा गाँव के जीवन में भरपूर से रहें,
आप सबसे दूर हैं मजबूर से रहें।

शान्त रस का प्रयोग तो बहुतायत से हुआ है–

गाँव की संध्या वर्णन में शान्त रस की छटा देखिये–

गऊ धूरि की बेला है,
बड़ौ मौसम अलबेला है।
लगौ खुसियों का मेला है, खेलरै, बालक युवक किशोर।
कोलाहल हो रऔ गाँव में, आ गये भइया ढोर।
बरैदी दै रये लंबी टेर,
हार से लाये गइँयाँ घेर।

कला पक्ष– कला पक्ष के मुख्य दो तत्व हैं–

भाषा एवं शैली– बुन्देला जी की भाषा ठेठ बुन्देली न होकर, साहित्यिक एवं परिमार्जित भाषा है। आपने उर्दू के शब्दों का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है। आपकी भाषा सरल, सहज और सरस है जो श्रोताओं के मन को छू जाती है। अलंकृत शैली एवं कोमलकान्त पदावली से युक्त है। पुरुष शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। आपके गीतों की भाषा में भाव गांभीर्य एवं अर्थ गांभीर्य है। वह तीनों शब्द-शक्तियों से युक्त है। वह ग्रामीण परिवेश की जन-जन की भाषा है जो लोक संस्कृति के चित्र प्रस्तुत करती है। उसमें मुहावरे, एवं लोकोक्तियों का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया है। उसके सम्बन्ध में एक आलोचक के विचार इस प्रकार हैं–

उनका स्वभाव उनके गीतों में भी दिखाई देता है। उनके गीतों को भाषा या छन्द शास्त्र की कसौटी पर कसने से समीक्षक विद्वानों को निश्चित रूप से शिकायत होगी लेकिन वे कहते थे कि मैं भावों को महत्व देता हूँ, किसी शास्त्र को नहीं। जिनके लिये और जिनकी भाषा में, मैं गीतों की रचना करता हूँ वे शास्त्र बंधनों से ऊपर हैं। जनता की बात, जनता की भाषा में। पं. कृष्ण कवि की पुस्तक में कवि की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त करते हुये उन्होंने लिखा

है कि– 'संसार भले ही भाषा-भाषा चिल्लाता रहे, लेखक ने गोस्वामी जी की सूक्ति को हृदयंगम कर कार्य किया–' यथा–

'गिरा ग्राम्य सियाराम जस, गावहिं, सुनहिं सुजान।' तथा 'भक्ति भदेस वस्तु भल वरनी' और भाषा का संस्कृत भाव चाहिये साँच। ग्रामीण बोलचाल की भाषा बनावट से दूर, मन को मोहने वाली मधुर भाषा होती है।' बुन्देला जी की भाषा इसी प्रकार की भाषा है।

उनके लोक गीत मुख्यतः ग्रामीण परिवेश, प्रकृति, रीतिरिवाज, खान-पान जीवन दर्शन, तीज-त्यौहार और भाव संसार से गहराई से जुड़े हैं। अपने गीतों को उन्होंने अपने स्वर, शैली और लय से प्रभावी रूप दिया है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग में भी ग्रामीण जगत के ही उपकरण हैं जो सहज, मौलिक और आत्मीय लगते हैं। यथा–

'उरिया ज्यों चुरिया खनकै। बूँदन पैजनिया ठनकै।' इन्द्रधनुष उग्यौ अम्बर में मानों घटा पैरे करधनियाँ। 'रऔ विजना सौ थर-थर काँप।' 'मानों काछी की बिटिया ने पैरी जरी की सारी।' 'मरे खाँ मारत है करतार।' 'हम तो हैं गड़बात के पथरा।' 'कुदई के लड्डुआ मोतीचूर से।' आदि।

बुन्देला जी कवि और कवि कर्म को महत्वपूर्ण मानते थे जो वास्तव में कवि को अमरत्व प्रदान करता है। वे यह भी मानते थे कि बिना अतीत के, वर्तमान और भविष्य की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतीय धर्म, इतिहास और संस्कृति के प्रति बुन्देला जी में गहरा अनुराग था। उन्होंने लिखा है कि– 'सच पूछा जाय तो अतीत के बगैर वर्तमान और भविष्य ठीक वैसा ही है जैसे बगैर बल्दियत के इन्सान होता है।'

नाद सौन्दर्य– रंगे तन रंग गये हैं मन रंग, कहरबा जब रमसइँया गाय।
पतरी कमर बूँदा बारी, सपनन मोय दिखाय।
अ र र र र होरी है।
स र र र र र होरी है।

शैली– उन्होंने निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग किया है–
(1) गीत शैली, (2) लोकगीत शैली, (3) तुकान्त एवं अतुकान्त छंद, (4) अन्य छंद।
काव्य शैली में निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग किया है–
(1) वर्णनात्मक शैली (2) विवरणात्मक शैली
(3) भावात्मक शैली (4) चित्रात्मक शैली
(5) रागात्मक शैली (6) व्यंग्यात्मक शैली।

(2) अलंकार योजना– बुन्देला जी की कविताओं, गीतों में अनेक प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। इस सम्बन्ध में एक आलोचक ने लिखा है– 'बुन्देला जी के गीतों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास, अन्योक्ति, विरोधाभास आदि अलंकारों तथा बिम्बों, प्रतीकों और कहावतों, मुहावरों का प्रयोग अनायास भाव में हुआ है। उनकी यह सचेतन संयोजना नहीं है। उपरोक्त सभी के प्रयोग में ग्रामीण जगत के सहज उपकरण हैं जो सहज, मौलिक और आत्मीय लगते हैं।' यथा– 'उरिया ज्यों चुरिया खनकै। बूंदन पैजनियाँ ठनकै।' 'इन्द्र धनुष उग्यौ अम्बर में मानों घटा पैरें करधनियाँ', 'रऔ बिजना सौ थर-थर काँप', 'दीनता आई

मानों सदेह', 'मानो काछी की बिटिया ने पैरी जरी की सारी', 'मरे खाँ मारत है करतार', 'हम तो हैं गड़बात के पथरा', 'कुदई के लड्डुआ मोतीचूर से' आदि।

(4)

माधव शुक्ल 'मनोज'

प्रश्न–6. माधव शुक्ल 'मनोज' के काव्य की काव्यगत विशेषाएँ लिखिए।

अथवा

'माधव शुक्ल 'मनोज' बुंदेलखंड के प्रतिनिधि कवि हैं।' इस कथन को अपने तर्क देकर समझाइये।

अथवा

माधव शुक्ल 'मनोज' के काव्य वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।

अथवा

माधव शुक्ल 'मनोज' के भावपक्ष एवं कलापक्ष पर प्रकाश डालिए।

उत्तर– माधव शुक्ल 'मनोज' मध्यप्रदेश के बुंदेली अंचल के प्रतिभाशाली कवि है। स्वयं के गीतों को अपने सुरीले कंठ से गाकर उन्होंने विशेष ख्याति पाई। वे गाँव के प्रतिबद्ध कवि हैं। माधव जी का अपने गाँव से, वहाँ की संस्कृति से, तीज-त्यौहारों और मान्यताओं तथा विकास से विशेष प्रेम है। वे गाँव का विकास चाहते हैं, लेकिन साथ ही अपनी पहचान भी बनाए रखना चाहते हैं। माधव जी के गीतों में गाँवों का स्पंदन अनुभव किया जा सकता है। आपके गीत नयी शैली और बिम्बों से ओतप्रोत हैं। आप नवीन छंदों के प्रणेता है।

माधव जी के बुंदेली गीतों में बुंदेली मिट्टी और संस्कारों की खुशबू आती है। बुंदेली मुहावरे, अलंकार और प्रतीकों से सजी उनकी कविता बरबस ही पाठकों का मन मोह लेती है। यथा–

हँस रई चरौंजी सी दाँतों की पाँतें।
मिसरी सी मीठी है सब कोउ की बातें।
उठ के उमंगों में डोलत फिरत है
कोऊ अब नइयाँ अलाल पिया।
हो गई जा धूरा गुलाल पिया।

माधव शुक्ल जी के गीतों में सामाजिक जीवन का यथार्थ अनेक भावपूर्ण मुद्राओं में आकर पाठकों को रोमांचित कर देता है। उनकी कविताओं में भावपक्ष बहुत ही प्रबल और सार्थक रूप में व्यक्त हुआ है। साथ ही कविताओं की भाषा भी उनके भावों को सच्ची अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

माधव जी ग्रामीण संस्कार के कवि हैं। उन्होंने गाँवों को अत्यन्त सूक्ष्मता से और अपनत्व की भावना से देखा और जिया है। वे गाँवों की अभावों से भरी जिंदगी और मस्ती भरे चाल-चलन दोनों से ही परिचित हैं। गाँवों का जीवन आशावादी होता है। माधव जी इसी आशा के सहारे विषम और कठिन जीवन को भी सहजता से जीते हैं। उनकी कविता ''चले अइयो हो'' इन्हीं भावों से परिपूर्ण है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित प्रसंगों को देखिए–

आगत की आशा, नन्हों सो। सपनों
साँझ-सकारे हँसा जइयो।

चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।

इसी प्रकार से आशा भरी सुखद कल्पना के जीवन का चित्रण देखिए–

आसमान आसा पे टाँगे।
निकट गये निसदिन चौमासें।
चौपट–सी जा नल की बाजी।
परे ने अब लौं सीधे पाँसे।

गरीबी, निर्धनता तथा अभावों की त्रासदी का निम्न चित्रण अत्यन्त हृदय विदारक तथा मार्मिक है–

लकटे रे गये रौठा सपनें
गईं साँसे रमुआँ की,
अरथी बँधन लगी बेमौसम
बीस के बरस के धनुआँ की।
फरीं न फूलीं जे तिसनाएँ
कुट गये घर के धूआँ में
हम खुटियों पर लटके रे गये
फटे पुराने उन्ना से।

विरह की मारी पत्नी का स्वाभाविक चित्रण भी अत्यन्त सुन्दर है–

गोरी थी सो साँवरी हो गयी
ताने देत जिठनियाँ रे।
भई दूबरी ढीली हो गई।
कम्मर की करधनिया रे।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि माधव शुक्ल 'मनोज' बुंदेलखंड के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी कविता की भाषा पूर्ण–रूपेण बुंदेलखंड क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है।

प्रश्न–7. ''माधव शुक्ल 'मनोज' की कविताएँ नई शैली का संकेत करती हैं।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

अथवा

कवि माधव शुक्ल 'मनोज' अन्य कवियों से किस प्रकार भिन्न हैं?

अथवा

माधव शुक्ल 'मनोज' की रचनाओं का उदाहरण देते हुए समझाइए कि बुंदेली काव्य आज के जीवन का बिम्बात्मक चित्रण करने में समर्थ है।

उत्तर– माधव शुक्ल 'मनोज' नई सोच के कवि हैं। वे पुरानी और जर्जर परम्पराओं, मान्यताओं तथा संस्कारों की जंगयुक्त जंजीरों को तोड़कर नई चेतना और अनूठेपन से लैस होकर बुंदेली काव्य के क्षेत्र में प्रकट हुए। उन्होंने नये जागरण की उस किरण को देखा जो गाँवों का स्वर्णिम भविष्य रचने वाली है। गाँव अब जकड़न से मुक्त हो रहे हैं, आधुनिक सभ्यता और प्रगति उन्हें आकर्षित कर रही है। कवि मनोज ने गाँवों के इस परिवर्तन को बहुत सूक्ष्मतापूर्वक देखा और उसी अनुरूप ही उन्होंने अपने भावों के साथ–साथ अपनी

कविता की शैली में भी परिवर्तन किया। उनकी कविता में नई हिन्दी कविता की परिवर्तित शैली देखाई देती है। आपने नई छंद योजना, नये प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से बुंदेली काव्य को एक नई दिशा प्रदान की। इसका प्रमाण उनकी अप्रकाशित कविता संग्रह 'अनकही यात्राएँ' है।

कविताओं में छंद के साथ–साथ उनकी लय, तान और गति में भी नवीनता है। उनके छंदों में एक प्रवाह है। वे बुंदेली खुशबू से भरपूर अपनी अक्खड़ता से परिपूर्ण हैं। बुंदेली बोली का माधुर्य, उसकी सरसता तथा खुरदुरापन उनकी कविताओं में अपूर्व समन्वय और पूर्ण सौन्दर्य के साथ विद्यमान है।

खादी बिछौना, सादो उढौना
सूती उसीसो भरा जइयो
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।

बुंदेलखंडी जीवन बुंदेली पठारों जैसा ही कठिन और कठोर होता है। उनके स्वभाव में अक्खड़ता भी है परन्तु अभावों के बावजूद उनके नारियल के समान कठोर हृदय में कोमल और नारियल की पनीली गिरी के समान सरस हृदय भी विद्यमान है। वे तीज त्यौहारों पर अपने सारे ईर्ष्या, द्वेष, लड़ाई, झगड़े भूलाकर, एक होकर मस्ती के साथ उत्सव मनाते हैं। उनकी कविता मुहावरों और अलंकारों की स्वाभाविक छटा बिखेरती हैं, देखिए निम्न पंक्तियाँ–

चल रई है पुरवैया लेकें अँधूरा
लग रई है माथे पे मौसम की धूरा।
मिलजुर कें सब कोऊ अब गाउत है फागें
मिट गओ है मन को मलाल पिया।
हो गई जा धूरा गुलाल पिया।

अपने अनूठे भावों, अनूठी शैली और अनूठी छंद योजना तथा बिम्बों के प्रयोग के कारण 'मनोज' जी अन्य बुंदेली कवियों से भिन्न हैं। वे बुंदेली के प्रयोगशील कवि हैं।

बुंदेली समाज में विपन्नता, अभाव और निर्धनता का साम्राज्य है। इसका कारण यहाँ की भूमि का पठारी, कँकरीली और पथरीली होना है। यहाँ के 80% लोग आज भी खेती हेतु वर्षा पर निर्भर हैं। कभी सूखा तो कभी पाला पड़ने से फसल बर्बाद हो जाती है। अभावों में भी सुख की आशा का बिम्ब दर्शनीय है–

भूली–सौ मौसम, सूखी बदरिया
सूखी–सी आँख जुड़ा जइयो। चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
इसी प्रकार से–
लगे नौन–सी जा जिंदगानी बातें फीकी गाजर सी।
ऊँसई–सी लगन लगी है दुनिया जूठी पातर–सी।

बिम्बात्मक चित्रण में मनोज जी सिद्धहस्त हैं। आधुनिक जीवन की जटिलताओं का सटीक चित्रण करने में उनके बिम्ब पूर्णतया समर्थ हैं। उनकी बिम्बात्मक क्षमता में ताजगी, अनुभवशीलता और सौन्दर्यता का अभूतपूर्व समन्वय हुआ है।

प्रश्न–8. श्री माधव शुक्ल 'मनोज' का जीवन–परिचय देते हुये उनके साहित्य सृजन पर प्रकाश डालिये।

उत्तर– श्री माधव शुक्ल 'मनोज' का जन्म मध्यप्रदेश के एक गाँव परकोटा जिला सागर में दिनांक 1 अक्टूबर, 1931 में इनका जन्म एक किसान परिवार में हुआ। व्यक्तिगत जीवन में श्री 'मनोज' सागर के जनपदों में अध्यापन का कार्य करते रहे। मध्यप्रदेश के नवयुवक कवियों में आपका विशिष्ट स्थान रहा है। अपने सुरीले कण्ठ के कारण मधुर गायक के रूप में स्थापित हुये और प्रदेश भर में उनकी ख्याति फैल गई। ग्रामीण संस्कारों के कारण मनोज जी के गीतों में ग्रामीण बिम्बों एवं रीति–रिवाज तथा त्यौहारों का सजग चित्रण हुआ है। 'मनोज' की कवितायें नयी हिन्दी कविता में आधुनिक जीवन के चित्र प्रस्तुत करतीं हैं। उनका अप्रकाशित कविता संग्रह ''अनकटी यात्राऐं'' इसका प्रमाण है। प्रस्तुत कविता संग्रह में मनोज जी ने नयी छंद योजना द्वारा बुन्देलखण्ड का प्रतिनिधित्व किया है।

लघुउत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न–1. माधव शुक्ल मनोज का संक्षेप में जीवन–परिचय दीजिये।

उत्तर– इनका जन्म 1 अक्टूबर, 1931 को हुआ। कवि मनोज मध्य प्रदेश के नवयुवक कवियों में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन्होंने सुरीले कंठ के गायक कवि के रूप में बड़ी ख्याति प्राप्त की है। इनका लालन–पालन कृषक परिवार में हुआ है। सागर जनपद में आप अध्यापक के रूप में कार्यरत् रहे हैं।

प्रश्न–2. माधव शुक्ल मनोज ने कविता की नई शैली प्रारम्भ की है। आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं?

उत्तर– नई हिन्दी कविता में बुंदेली जीवन के चित्र–बिम्ब और जटिलताओं के साथ–साथ ग्रामीण परिवेश की ओर भी नये कवियों का ध्यान जा रहा है। मनोज की कवितायें इस नई शैली की दिशा का भी संकेत करती हैं। अपनी नई छंद योजना द्वारा कवि मनोज बुंदेलखण्ड का प्रतिनिधित्व करते हैं। कवि ने नये जागरण की दिशा में अपनी नई छंद योजना द्वारा क्रान्तिकारी कार्य किया है।

व्याख्या खण्ड
मूल पाठ सहित सप्रसंग व्याख्या

1. जनकवि जगनिक
'आल्ह-खण्ड'

(1) **सुमरन करकैं नारायण कौ, औ गनपति के चरन मनाय।**
कहौं मनौआ अब आल्हा कौ, शारद मोकौं होहु सहाय॥
माहिल राजा की चुगली में, बारावाट भये परमाल।
आल्हा छाये गढ़ कनउज में, महुये विपत रही सब काल॥
माहिल चलि गये गढ़ उरई में, और दिल्ली में पहुँचे जाय।
जहाँ कचहरी पृथ्वीराज की, माहिल उतरि परे अरगाय॥

संदर्भ– प्रस्तुत अवतरण पाठ्य–पुस्तक 'बुन्देली भाषा और साहित्य' के 'आल्ह खण्ड' से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता जनकवि जगनिक हैं।

प्रसंग– कवि जगनिक ने प्रस्तुत पद्यांश में महोबे पर छाये युद्ध के बादलों के कारण आये संकट का कारण स्पष्ट किया है।

व्याख्या– भगवान नारायण को स्मरण कर एवं ऋद्धि–सिद्धि के देवता भगवान गणेश की चरण वन्दना कर मां शारदा से प्रार्थना करते हैं कि ऐसा उपाय करो जिससे आल्हा बात मान ले और वापस महोबा आ जाय। असल में किन्हीं कारणों से आल्हा और ऊदल को महोबे से निकाल दिया था और इस समय दोनो भाई कन्नौज के राजाश्रय में रह रहे थे।

इस अवसर का फायदा उठाने के लिये पुराने शत्रु पृथ्वीराज के दरबार में माहिल ने चुगलखोरी कर बताया कि आल्हा–ऊदल महोबे में नहीं हैं अतः महोबे पर चढ़ाई कर जीतना आसान हो सकता है। अतः माहिल दिल्ली में पृथ्वीराज के दरबार में पहुँच गया।

(2) **जाय जुहारे पृथ्वीराज कौं, माहिल रहिगे माथ नवाय।**
परी दृष्टि जब पृथ्वीराज की, ऊँची चौकी लये बैठाय॥
बोले राजा फिर माहिल सें, जो की बात को समुझाय।
यह सुन माहिल बोलन लागे, सुनियौ विनय पिथौरा राय॥
आल्हा–ऊदल हें कनवज में, कोऊ मर्द महोबे नाँयँ।
सूनी परी सबै नगरी है, चलकैं लूट लेउ करवाय॥

संदर्भ– पूर्वानुसार।

प्रसंग– माहिल पृथ्वीराज के पास दिल्ली में पहुँचकर चुगली करता है।

व्याख्या– माहिल दिल्ली दरबार में जाकर पृथ्वीराज के समक्ष प्रणाम कर माथा झुका कर खड़ा हो गया। जब पृथ्वीराज की दृष्टि पड़ी तो माहिल को आदरपूर्वक बिठाया और आने का कारण पूछा। माहिल ने बताया कि इस समय आल्हा और ऊदल महोबे से बाहर है अतः महोबा सुनसान है अर्थात् महोबे की रक्षा करने वाला कोई नहीं है। यही उचित समय है महोबे पर आक्रमण कर उसे लूटने का।

(3) **डंका बाजौ गढ़ दिल्ली में, लश्कर तुरत होय तैयार।**
बजौ नगाड़ा जब लश्कर में, क्षत्री सबै भये हुशयार॥
पहले डंका में जिनबंदी, दूजे बाँध लये हथयार।
तीजे डंका के बाज खन, क्षत्री फाँद भये असवार॥
हाथी चढ़ैया हाथिन चढ़ि गये, बाँके घोड़न के असवार।
कोउ नालकिन, कोउ पालकिन, कोउ गजरथ भये सवार।

संदर्भ– पूर्वानुसार।

प्रसंग– माहिल के भड़काने पर पृथ्वीराज महोबे पर आक्रमण करने को तैयार हो गया। पृथ्वीराज ने फौज तैयार करने के आदेश दे दिये।

व्याख्या– पृथ्वीराज ने माहिल की बात मानकर फौज (लश्कर) को युद्ध की तैयारी का हुक्म जारी कर दिया। नगाड़ा बजते ही क्षत्रीय लोग तैयार हो गये। पहले डंके पर सब एकत्रित हो गये। दूसरे डंके पर हथियार सम्हाल लिये। तीसरे डंके के बजते ही सिपाही–सरदार अपने–अपने वाहन पर सवार हो गये। कोई हाथी पर और कोई घोड़े पर बैठा। कोई नालकी और कोई पालकी में सवार हो गया। कोई हाथी वाले रथ पर बैठ गया तथा चलने को तैयार हो गये।

(4) **ताहर, चंदन, गोपी तीनों, साजे कुँअर वीर बलवान।**
हथी साजो आदि भयंकर, तापर चढ़े भूप चौहान॥
सात लाख सेना दल सजिकै, कूच कौ डंका दियौ बजाय।
डोली धरती धौसा धमके, सूरज रहै धुन्ध में छाय॥
सात दिना की मंजिल करिकैं, महुबा धुरी दवाई जाय।
घेरा डारौ चार दिशा सों, फाटक बंदी दई कराय॥

संदर्भ– पूर्वानुसार।

प्रसंग– पूर्वानुसार।

व्याख्या– ताहर, चन्दन और गोपी नाम के तीनों बहादुर और बलवान राजकुमार अपने हथियारों से सजधज कर फौज के साथ चलने को तैयार हो गये। एक भयानक हाथी को सजाया गया जिस पर राजा पृथ्वीराज चौहान सवार हुये। इस प्रकार सात लाख सिपाहियों की सेना तैयार होकर, डंका बजते ही महोबे की ओर चल पड़ी। इस समय अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन करते हुये कवि कहता है कि हाथी–घोड़े और फौज के कूच करते ही ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे पृथ्वी पर भूचाल आ गया हो। धौंसा जोर–जोर से बजने लगा। इतनी धूल उड़ने लगी कि सूर्य के ऊपर धुन्ध–सा छा गया जिसमें सूर्य छिप गया। सात दिन–रात चलने के बाद महोबा के किला और पूरा नगर को घेर लिया। चारों दिशाओं फौजों ने डेरा डाल दिया तथा किले में आने–जाने के मार्ग बंद कर दिये।

(5) **बाहर को भीतर जावे ना, ना भीतर को बाहर जाय।**
ऐसौ समय परौ महुवे पै, विपदा कछू कही ना जाय।।
उड़ै चिरैया जो महुवे सैं, चौड़ा बाज देत छुड़वाय।
तुल तुल पानी महुवे जावै, दुख कौ कछू ठिकानौ नाय॥
रोवै रैयत चंदेले की हा हम कौन देस भग जायं।
सेजैं छोड़ दई पुरुषन ने, तिरियन तज दये सबै सिंगार॥
विपदा पर गई चंदेलै पै, ना घर मंडलीक औतार।

संदर्भ– पूर्वानुसार।

प्रसंग– पृथ्वीराज की फौजें महोबे में पहुँच गईं और चारों तरफ से घेर लिया।

व्याख्या–किले का घेरा इतना मजबूती से डाला गया कि न तो कोई व्यक्ति किले के भीतर जा सकता था और बिना आज्ञा के किले के बाहर भी नहीं आ सकता था। कवि कहता है इस समय महोबे पर ऐसी विपत्ति आई है कि जिसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। फौजें इतनी सतर्क हैं कि यदि महोबे से कोई चिड़िया भी आकाश में उड़ती है तो बाज पक्षी को छोड

कर चिड़िया को पकड़ लिया जाता या मार दिया जाता। उस समय चुपचाप संदेशा भेजने का काम कबूतर आदि पक्षियों से लिया जाता था।

कवि कहता है कि पानी और रसद भी बड़ी सावधानीपूर्वक थोड़ी–थोड़ी (अपर्याप्त मात्रा) मात्रा में किले में पहुँचाया जाता रहा जिससे लोग बड़े कष्ट में थे। महोबे के चंदेल राजा की प्रजा रो–रो कर कह रही थी कि हाय अब वे महोबा छोड़ कर कहाँ जायें। पुरूषों को नीद नहीं आ रही थी और इस दुःख के कारण स्त्रियों ने श्रृंगार करना छोड़ दिया था। ऐसे समय में राजा भी किले से बाहर थे।

(6) **पाती लिख भेजी चंदेल कौं अपने हाथ पिथौरा राय।**
डाँड़ पैटहौ जो तुरतै ना, तौ महुबे कौ लेय लुटाय॥
अजय कलिंजर किला सौंप देव, बैठक दुर्ग ग्वालियर क्यार।
पवन बछेड़ा पारस पथरी, डोला देव चंद्रावलि क्यार॥
चढ़ कै मल्हना सतखंडा पै, देखी फौज पिथौरा राय।
नीचे उतरीं चिंतातुर हो, और राजा कों लियौ बुलाय॥

संदर्भ–पूर्वानुसार।

प्रसंग– पूर्वानुसार।

व्याख्या– अब पृथ्वीराज ने अपने सन्देशवाहक के हाथ पत्र लिख कर चंदेल राजा के पास भिजवाया। पृथ्वी राज ने लिखा कि एक निश्चित धनराशि दण्ड स्वरूप भिजवाई जाये अन्यथा महोबे को लूट लिया जायेगा। इसके साथ ही कलिंजर के अजेय दुर्ग को भी सौंप दिया जाय। ग्वालियर का किला बैठक के रूप में दिया जाये। पृथ्वीराज ने इसके साथ ही हवा से बातें करने वाला घोड़ा, लोहे को सोना बनाने वाला पारस पत्थर और डोले में बैठाकर राजकुमारी चन्द्रावलि की माँग भी लिख भेजी।

इधर किले के भीतर रानी माल्हनदे ने सात मंजिल वाले किलाखण्ड पर चढ़ कर पृथ्वीराज की फौजों को देखा फिर चिन्तित हो कर नीचे उतरीं और सबसे पहले उसने राजा को बुलवाया।

2. ईसुरी

वन्दना

ईसुरी

(1) **सुमरन करों सारदा माता**
जीसें सनमुख रयें विधाता
ग्यान–ध्यान परमेसुर दैवें
कृपा करो मो पै कर लेवें।
छंद–छंद नए एकउँ मोरें
वंद अखोती, आखर थोरे
ईसुर ध्यान धरूँ मन माईं
पूरन कारज करहिं गुसाईं।

संदर्भ– प्रस्तुत फाग कविता प्रसिद्ध बुंदेलखंडी लोक कवि ईसुरी द्वारा रचित है।

प्रसंग– कवि ईसुरी ने इस फाग में माँ सरस्वती के प्रति अपनी भक्ति को समर्पित किया है। शारदा को ज्ञान की देवी कहा जाता है। ऐसी मान्यता है कि माँ शारदा की कृपा प्राप्त होने से बुद्धि तथा विवेक में अप्रत्याशित वृद्धि हो जाती है।

व्याख्या– कवि इस वंदना के माध्यम से माँ शारदा की उपासना कर रहे हैं। कवि कहते हैं कि हे शारदा माता! मैं तुम्हारे नाम का बार-बार सिमरन (जाप) कर रहा हूँ क्योंकि तुम्हारे आगे तो विधाता भी ज्ञान और विवेक प्राप्त करने हेतु झुककर खड़े रहते हैं। तुम्हारा ध्यान करने से परमेश्वर की भी कृपा प्राप्त हो जाती है। मैं काव्य रचना की ओर उन्मुख होना चाहता हूँ इस कारण मुझ पर थोड़ी कृपा कर दो। मुझ से एक भी छंद सुगठित तरीके से नहीं बन पा रहा है। मेरी शब्दकोष में शब्द भी बहुत ही कम हैं। इसलिए मैं आपका ध्यान करता हूँ। मेरे इस कार्य को पूरा करने के लिए आप मुझे अपनी कृपा प्रदान करें।

काव्य सौन्दर्य–

(1) माँ शारदा ज्ञान की देवी है। कवि ने शारदा माँ के प्रति अपनी भक्ति को व्यक्त किया है।

(2) बुंदेलखंड के लोक जीवन में माँ शारदा की आराधना को अधिक महत्व दिया गया है।

भक्तिपरक फागें

(2) **हमखाँ कोउ रजउ की सानी, दूजी नई दिखानी।**
दस उर चार भुवन चौदा में, तीन लोक में छानी।
बादसाय कें बेगम नइँयाँ, देउतन कें देउतानी।
'ईसुर' देवलोक में नइँयाँ, जस वृषभान भुमानी।

संदर्भ– प्रस्तुत फाग "श्रृंगारपरक फाग" से अवतरित हैं। इसके रचयिता बुंदेली के लोक कवि ईसुरी हैं।

प्रसंग– रजउ नाम की सुन्दर स्त्री ईसुरी की प्रेमिका तथा प्रेरणा स्रोत थी। कवि उसकी सुन्दरता का दीवाना था। कवि ने इस फाग में अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य की प्रशंसा की है।

व्याख्या– कवि ईसुरी कहते हैं कि हमें इस संसार में 'रजऊ' जैसी अप्रतिम सौन्दर्य वाली अन्य कोई भी स्त्री दिखाई नहीं दी। मैंने इस संसार में ही नहीं बल्कि दसों दिशाओं, चौदह भुवनों एवं तीन लोकों में 'रजउ' से सुन्दर स्त्री की खोज की लेकिन वैसी सुन्दर स्त्री मुझे कहीं भी नहीं दिखाई दी। जैसी अनिंद्य सुन्दरी 'रजउ' है वैसी अनिंद्य सुन्दरी न तो किसी बादशाह की बेगम है और न ही किसी देवता की देवी। कवि ईसुरी कहते हैं कि 'रजउ' जैसी अद्वितीय सुन्दरी सम्पूर्ण देवलोक में नहीं है, वह तो साक्षात राधा है। 'राधा' और 'रजउ' दोनों का सौन्दर्य समान है अर्थात् ईसुरी का भौतिक प्रेम 'राधा' में पर्यवसित हो गया अर्थात् 'रजउ' राधामय हो गयी है। कवि का भौतिक प्रेम आध्यात्मिक प्रेम में परिवर्तित हो गया।

काव्य सौन्दर्य– (1) 'रजउ' के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन है।

(2) प्रेम की एकनिष्ठता दर्शनीय है।

(3) भौतिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम में पर्यवसन हो गया है।

प्रकृतिपरक फागें

(3) **अब रित आई बसंत बहारन, पान फूल फल डारन।**
बागन बनन बँगलन बेलन, बीथी बगर बजारन।
हारन हद्द पहारन पारन, धवल धाम जल धारन।
कपटी कुटिल कंदरन छाई, गई बैराग बिगारन।
'ईसुर' कंत अंत घर जिनके, तिनें देत दुख दारून॥

संदर्भ– प्रस्तुत पद्यांश कवि 'ईसुरी' द्वारा रचित प्रकृतिपरक फागों में से लिया गया है।

प्रसंग– कवि ने बसंत के आगमन और वातावरण पर उसके प्रभाव का वर्णन इस फाग में किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि अब बसंत ऋतु के आने से चारों ओर बहार दिखाई दे रही है। पान की बेल पर पान और पेड़ों की डालों पर फूल और फल लगने लगे हैं। बागों में, वनों में, सब ओर बहार छाई हुई है। बंगलों पर, गलियों और बाजारों में बेलें छाई हुई हैं। खेतों की मेढ़ों पर और पहाड़ों पर हरियाली छाई हुई है। यहाँ-वहाँ स्वच्छ जल भरा हुआ है। कंदराओं में भी बसंत की बहार छाई है। बसंत बहार को कवि ने कपटी और कुटिल कहा है- क्योंकि बसंत ने भगवान शिव की आराधना को भी भंग कर दिया था। अतः कंदराओं और पहाड़ी गुफाओं में साधना में लीन विभिन्न साधू-संन्यासियों की तपस्या को भंग कर देने वाला है बसंत का सुहावना मौसम। इसीलिये कवि ने बसंत को कपटी और कुटिल की संज्ञा दी है। कवि फिर कहता है कि जिसका प्रियतम घर से दूर हो उसे बसंत का मौसम सुख की अपेक्षा निश्चित रूप से दुःख ही देता है।

लोक जीवनपरक फागें

(4) **हंसा उड़ चल देस बिरानें, सरवर जात सुखानें।**
इतै रमे की कौन भलाई, जितै बकन के थानें।
समुद भरे हैं अगम उतै चल, सुख पावै मनमानें।
बचत बनें तो बचो 'ईसुरी', तानें काल कमानें॥

संदर्भ– प्रस्तुत पद्यांश लोक जीवनपरक् फागों से लिया गया है। इसके रचयिता कवि 'ईसुरी' हैं।

व्याख्या– कवि इस भौतिक जगत को नश्वर मानकर कहता है कि हे शरीर-रूपी हंस अब अनजाने लोक में उड़ चल। इस जगत् के तालाब तो अब सूखने वाले हैं। अब यहाँ रहने से क्या लाभ अब तो यहाँ केवल बगलों के रहने लायक स्थान रह गये हैं। उधर उड़ चल जहाँ अथाह समुद्र भरे पड़े हैं। वहाँ तुझे सच्चा सुख मिलेगा। 'ईसुरी' कहते हैं कि हे मानव अगर तू बच सकता है तो बचने का प्रयत्न करले क्योंकि स्वयं काल तेरे सामने मृत्यु-रूपी कमान ताने तैयार खड़ा है।

कवि ने इस फाग के माध्यम से जीवन-दर्शन देकर यह समझाने की कोशिश की है कि ये जग मिथ्या है। इसमें तो जीवन क्षण-भंगुर है अतः अंत में उस परमपिता की छाया में ही पहुँचना है।

3. संतोष सिंह बुंदेला

ऐसौ जौ बुंदेलखंड है सौ नौनें सें नौंनौ

(1) ऐसौ जौ बुंदेलखंड है सौ नौनें से नौंनौ
ई–माटी में आधी माटी और आधी में सौनौं।
गलियन में जी के हीरा डरे।
पग–पग पै निर्मल नीर भरे।
गाँव लगें रमनीक इतै के नदियाँ ताल भरे हैं,
गेर गरे पर्वत मालायें मानो कोट फिर हैं,
चंबल, केन, नरबदा, जमुना जनमन के सब पीरा हरे।
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।
चित्रकूट के सब्दन में जो सब पतिक ते दामिन,
पन्ना जुगल किसोर, ओरछे रामलला धरतीरा धरे।
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।
सूरसती तुलसी से दिनकर एई भूमि में भये हैं,
उड़गन केसब दास ओइछे आगन उपजाये हैं,
तानसेन बैजू प्रबीन कै किनर–किनर मंजीरा करे,
छत्रसाल मधुकर सों भये हैं और ऊदल बल धामा,
नांव अमर दतिया की कर गऔ दण्ड पेल के गामा।
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।
हर पत्थर भगवान इतै के, हर पत्थर हीरा है,
हर बेटी झाँसी की रानी, अथवा फिर मीरा है,
दुर्गावती सती अनसूइया, पान ज्ञान हरिक्षीरा करे,
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।
लमटेरा हैं संत इतै कौ फाग उर्वसी जानो,
बिलबाई खेतन की रानी, अन्न से भरे खजानो
दीवारी के गीत कन्हैया गोपिन के मन चीरा हरे,
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।
विर्चुन यो नोंन में खात ओ का कोका कोला पीने,
भूल जात मिष्ठान सभी है डुबरी खाली जीने,
मौआ, बेर, अचरवा तेंदू निर्धन के धन धीरा धरे,
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।

संदर्भ– प्रस्तुत कविता बुंदेली कवि संतोष सिंह 'बुंदेला' द्वारा रचित है।

प्रसंग– कवि ने इस कविता में बुंदेलखंड की भौगोलिक संरचना तथा बुंदेलखंड की प्रकृति का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि संतोष सिंह 'बुंदेला' अपनी कविता के माध्यम से वर्णन कर रहे हैं कि यह बुंदेलखंड अच्छे से अच्छा यानी सबसे अच्छा है। यहाँ की मिट्टी में आधी तो मिट्टी है और

आधा सोना है। अर्थात् यहाँ की भूमि सोना उपजाने वाली भूमि है। कवि का कहना है कि यहाँ की गलियों में अर्थात् मार्ग में हीरे जवाहरात पड़े हुए हैं। यहाँ की हर गली में कोई न कोई प्रसिद्ध व्यक्ति निवास करता है। यहाँ पर योद्धा सैनिक, क्रान्तिकारी, राजा, महाराजा, कवि, लेखक आदि निवास करते हैं। यहाँ की भूमि पर कदम–कदम पर निर्मल और स्वच्छ जल भरा है। इन्हीं नदियों और तालाबों के कारण यहाँ के गाँव सुन्दर और मनभावन लगते हैं। इसके चारों ओर पर्वतमालाएँ हैं जिसमें विध्यांचल सबसे बड़ी पर्वतमाला है। यह क्षेत्र पर्वतों से पूर्णतः घिरा हुआ है।

यहाँ पर लोगों के मन की पीड़ा को हरने वाली केन, चंबल, यमुना, नर्मदा आदि नदियाँ बहती हैं। ये नदियाँ अपने जल से लोगों की फसलों को उपजाऊ बनाती हैं और पीने के लिए जल देती हैं। इन्हीं नदियों के कारण यहाँ कदम–कदम पर पानी मिल जाता है। यहाँ स्थित चित्रकूट जहाँ भगवान राम ने अपने वनवास के बारह साल बिताए थे लोगों की चिंता को हर लेता है, और मंदाकिनी नदी लोगों के पापों को धो डालती है। पन्ना के जुगल किशोर (श्री कृष्ण जी) के दर्शन मात्र से ही आदमी धन्य हो जाता है। ओरछा नरेश लाला हरदौल समस्त धरती का भार अपने ऊपर रखे हुए हैं अर्थात् वे सभी का भला करते हैं।

सूरदास, सती अनुसूइया, सती सावित्री और तुलसीदास जैसी महान आत्माओं ने इसी भूमि पर (बुंदेलखंड में) जन्म लिया है। उडगन कवि केशवदास आदि ओरछा के दरबार में रचनाकर्म व अपनी कविता पाठ करते रहे हैं। तानसेन, बैजू बाबरा आदि महान संगीतज्ञ इसी भूमि पर जन्मे और उन्होंने अपना संगीत गुंजाया। छत्रसाल जैसे योद्धा तथा मधुकर और आल्हा–ऊदल जैसे बलशाली योद्धा भी यहीं से हैं। दतिया में गामा पहलवान हुए हैं जिनसे आज सम्पूर्ण विश्व परिचित है। यहाँ के प्रत्येक पत्थर में भगवान हैं और पत्थर में हीरा है। यहाँ की प्रत्येक बेटी झाँसी की रानी है या फिर मीराबाई है। रानी दुर्गावती, सती अनुसूइया तथा मानसिंह तोमर जैसी महान हस्तियाँ भी यहीं बुंदेलखंड की ही हैं।

बुंदेलखंड का ही संत लम्पट है। यहाँ केवल फाग गाई जाती है जो कि किसी भी उर्वशी काव्य से कमतर नहीं है। यहाँ के खेतों में सर्वाधिक बिलबाई पैदा होती है, जिससे सभी का घर अन्नरूपी खजाने से भरपूर रहता है।

यहाँ के लोग बेर को पीसकर उसका पाऊडर बनाकर (जिसे विर्चुन कहते हैं) उसे धोकर उसमें नमक घोलकर पीते हैं जो उनके लिए किसी कोका कोला से कमतर नहीं होता। इसलिए यहाँ के लोगों को किसी कोका कोला जैसे पेय की आवश्यकता ही नहीं है। यहाँ की डुबरी को खाकर लोग सभी प्रकार की मिठाइयों को भूल जाते हैं। महुआ, बेर, अचार और तेंदू यहाँ के निर्धन लोगों के धन होते हैं। इन्हीं से वे अपना पेट पालते हैं। अंत में कवि ने पुनः सम्पूर्ण जगह (पग–पग) पर स्वच्छ जल भरे होने की बात कही है।

विशेष–

(1) प्रस्तुत कविता में बुंदेलखंड का भौगोलिक, सामाजिक और धार्मिक रीति रिवाजों का जीवन्त चित्रण है।

(2) कवि ने बुंदेलखंड को सर्वश्रेष्ठ बताया है।

(3) अतिश्योक्ति और छेकानुप्रास अलंकार का प्रयोग है, जैसे– पग–पग, गलियन में हीरा डरे आदि।

(4) भाषा ठेठ बुंदेली है जिसमें ग्रामीण शब्दों जैसे– नौंनो, विर्चुन आदि का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। खड़ी बोली का भी कहीं–कहीं प्रयोग हुआ है।

मिठौआ है ई कुआँ को नीर

(2) मिठौआ है ई कुआँ कौ नीर।
छायंरौ पीपर कौ गंभीर।।
मिटाले तनिक घास की पीर, ओ पानी पीले गैलारे।
तनिक बैठकें तुम सुस्ताले, जा नै फिर जारे।।
क्वारं कौ घामौ है, औ सूरज सामौ है।
को टाकुर तुम आए कितैसें, और तुम काँ जानें।
मो खाँ एसौ लगत होव, जैसें तुम जाने माने।।
पसीना बैटा बिलमा लेव।
और दो–दो बातें कर लेव।।
न आगे पानी मिले पसेव, हौ प्यासे मजलन के मारे।
और हम का करिये सत्कार, गाँव के
भूखा अपढ़ गंवार। गडई भर जल हाजिर,
करैं तुम खाँ सादर।
हमतौ है ग्वालन की बेटी, हार पहारन रइए।
गइयन बछियन से बाबू, मन की बातें कर लइये।।
हमारे गुइयाँ छेवलं सगौन,
करें बातें हम, बे रए मौन।
दुक्ख मन को जानत है कौन, रहै मन ऐईसें समझारे।
आज जानें का मन में आई, और तुमसें इतनी बतराई।।
लाज सब टोरी है,
करी मौं जोरी है।
माँजी गड़ई निकारौ गगरा, जव वा पानी ल्याई।
मैंने पूछौ नावं तुम्हारौं, बोली गोरी बाई।।
न देखे ऐसे निछल सनेह,
है जवसे मैंने धरी है देह।
उमड़ आये आँखन में मेह, तौ टेड़ौ मौं करके टारे।
बोली तुमसौ लम्बो ज्यान, हतौ भइया मोरौ मलखान।।
पुलिस ने मांडारौ,
दुखी घर कर डारौ।
फिर मैं बोलो बिन्ना तेरौ ब्याव भऔ के नइयाँ।
झुक गये नैंन तनिक मुस्क्यानी, फिर भर दई तरइयाँ।।

तुरत मैं बोलो गोरी बाई,
आज से मैं हौं तेरौ भाई।
नेह की नदिया सी भर आई, खुसी से नैंना कजरारे।
चूम लए ऊके मैंने पाँव, बताओ अपनो नाँव औ गाँव।।
और बा लिपट आई,
और बोली हर्षाई।
मोरी उमर तुम्हें लग जावै, भाभी रहे सुहागन।
दूधन पूतन फलौ खेल है, चंदा सूरज आँगन।।
लौट आई मोरे घर दौज,
मनाहौं अभ मैं सावन रोज।
कौ मोरी जनम–जनम की खोज, करी तुम मइया रे।
रहत तौ औरन के मर भार, बिना सारे की है ससुरार।।
दुक्ख सब मिट गये हैं
कै भइया मिल गए हैं
मिठउआ है ई कुंआ कौ नीर।
छांयरौ पीपर को गंभीर।।

संदर्भ– प्रस्तुत कविता 'मिठौआ है ई कुआँ कौ नीर' प्रसिद्ध बुंदेली कवि संतोष सिंह 'बुंदेला' द्वारा रचित है।

प्रसंग– इस कविता में कवि ने गर्मी में धूप से परेशान किसी भी व्यक्ति को शीतल जल व प्रेम देने की बात कही है। कविता में पथिक तथा कवि की परस्पर आत्मीयतापूर्ण वार्ता का वर्णन किया है।

व्याख्या– कविता में एक राहगीर को सम्बोधित करते हुए कवि कह रहा है, (जो कि थका हुआ एक कुएँ के पास से गुजर रहा है) कवि उस राहगीर से कहता है कि इस कुएँ का जल अत्यधिक मीठा है और इस पीपल के पेड़ की छांव मन को बहुत ही सुकून देने वाली है। यहाँ पीपल की छांव में बैठकर थोड़ा–सा सुस्ता ले और अपनी धूप (गर्मी) की पीड़ा को थोड़ा–सा कम कर ले। थोड़ी देर यहाँ पर बैठकर सुस्ता (आराम कर) ले और फिर अपनी राह (गंतव्य पर) चले जाना। यह धूप क्वांर के महीने की है और सूरज सिर पर है। तुम कौन ठाकुर हो? कहाँ से आये हो? और किधर जा रहे हो? मुझे ऐसा लगता है कि तुम कोई जाने पहचाने से हो! आओ मेरे पास बैठकर अपना पसीना तो सुखा लो। तब तक दो–चार बातें ही कर लो। कवि आगे राहगीर से कहता है कि आगे पानी नहीं मिलेगा, प्यासे ही मारे–मारे फिरोगे और फिर यदि तुम्हें लगता हो कि हम सत्कार करें तो हम तुम्हारा सत्कार भी करेंगे, हम तो गाँव के बड़े–बूढ़े गँवार आदमी हैं और तुम तो रईस शहरी आदमी हो।

आगे कवि उसकी पत्नी से भी बात करते हुए कहता है कि हम तो ग्वालों (दूध बेचने वालों की) की ढोटी हैं, खेत में ही रहते हैं हमारे पास और कोई बात करने को तो होता नहीं है तो हम गाय–बछड़ों से ही बात कर लेते हैं। हमारी गायें भी बहुत अच्छी हैं। हम उनसे बातें करते हैं और वे मौन रहकर बातें सुनती हैं और फिर बाबू मन के दुख को कौन जानता है?

इसीलिए इन्ही बातों से अपने मन को समझा लेते हैं। परन्तु पता नहीं आज मन में क्या आई कि तुमसे इतनी बातें कर लीं। अपनी शर्म या संकोच छोड़कर आपसे मुँहबोली की है। आगे कवि ने बताया कि उसकी (राहगीर की) लड़की ने कहा कि मांजी घड़े में से लोटा निकालो और फिर उसके बाद वह पानी भरकर ले लाई। कवि ने उसका नाम पूछा तो उसने गोरी बाई नाम बताया। अपने जन्म से लेकर आज तक कभी भी मैंने ऐसे निश्छल प्रेम से परिपूर्ण लोग नहीं देखे। कवि कहता है कि प्रेमवश मेरी आँखें भर आयीं ऐसे ही उस राहगीर की पत्नि की भी आँखें भर आईं और वह कुछ देर बाद मुँह को थोड़ा फेरकर (अन्यत्र देखते हुए) बात को टालने का प्रयास करते हुए बोली कि मेरा भाई तुमसे लम्बा और जवान मलखान था जिसे पुलिस ने मार दिया। हम आज तक दुखी हैं। फिर कवि ने उससे कहा कि बहना तेरी शादी हुई कि नहीं? हल्की मुस्कुराहट के साथ उसकी आँखें आँसुओं से भर गईं। तभी कवि ने उससे कहा कि गोरी बाई, आज से मैं तेरा भाई हूँ। उस समय जैसे प्रेम का सागर उमड़ आया हो, फिर उसकी दोनों आँखें खुशी से चमकने लगीं और फिर कवि ने उसके पैर छूते हुए उसका और उसके गाँव का नाम पूछा। वह कवि से गले लग गई और अपने आशीर्वाद देते हुए बोली कि मेरी उमर तुम्हें लग जाए और भाभी सदैव सुहागन रहे। दूधौ नहाएँ और पूतौ फलैं अर्थात् छोटे-छोटे बाल बच्चे आपके आंगन में खेलें। वह इस भाई को प्राप्त करके कह रही है कि मेरी भाईदौज आज वापस आ गई। अब मैं रोज सावन (राखी) मना सकूंगी। वह कहती है कि मेरी जनम-जनम की खोज तुमने पूरी कर दी है। नहीं तो मेरे घर में औरों के मन की बातें बोझ जैसी लगतीं कि बिना साले (पत्नि के भाई) की ससुराल का क्या भरोसा है? लेकिन मेरे भईया अब तुम जो मिल गए हो तो मेरे सारे दुख मिट गये हैं। इस कुएं का जल बहुत ही मीठा है। आप यहाँ कुछ देर ठहरकर आराम कर लीजिए।

काव्य-सौन्दर्य-

(1) इस कविता में कवि स्वयं राहगीर के रूप में चित्रित है।
(2) बुंदेलखंडी लोगों के चरित्र व उनकी वत्सलता और विशुद्ध प्रेम का वर्णन है।
(3) भावात्मकता है तथा बिम्बात्मकता है।
(4) भाईदौज, श्रावण और साला प्रतीक रूप हैं।
(5) कविता की भाषा बुंदेली है और कहीं-कहीं पर खड़ी बोली के शब्दों और गंवई (ग्रामीण भाषा) शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

लगा रऔ कुकरा कबसें टेर

(3)

लगा रऔ कुकरा कबसें टेर
पसर खाँ हो रई देख अबेर,
दमरुआ न कर रे अबेर, भऔ उठ भैसा भुंसारौ,
पीरी पौ फट आई, अबै लौ उठो न दई मारौ, भैंसिया ठाड़ी हैं,
ब गइयाँ ठाड़ी हैं।
बाँग सुनत मुर्गा की डुकरिया लरका खाँ चिल्लावौ,
उतै बहुरिया कहै विधाता, और रात रुक जावै।
भओ नइयाँ दिन डूबत खेल,

समासई काऐ देत पटेल
बड़ानौ नहीं दिया को तेत, लाती तो भैंसन खाँ चारौ
अबै कछु बातई न हो पाई, और खलबल पारें है बाई
पीर पर न जानै
टान अपनी टानै
रातें होन लगी कै हलकी, कै बाई बौरानी
कै कुकरा बैरी मोसें, लगी भँजाई पुरानी
बोल गई जल्दी स्यामा सौत
नई कुटनी खाँ आई मौत
अबै तौ रात है बांकी भौत, लगो है खोरन अंधयारो
सुनौ हो पसर मसर की बात, तुमारी मोखा नहीं पुसात,
अकेलें मोय डर लागै
जियां मोरौ घबराबै,
छोड़ बिछौना उन्ना पैरे, दमरू सोचत जावै,
हम हीरा सी नोंनी रातें, भैंसन संग गमावै, करौली तोखां करिआ खाय,
मोय न तोरी पसर सुहाय,
अकेलें को बाई से काय, कात तौ बिदौ जात रारौ
गदरे ठाड़े धान के खेत, देख कें जी ललचइयाँ लेत
अकेले का करिए,
समझ मन में रहिए
खोल किबारे भैंसे काड़ी काड़ी भैंस उगइयां
बहू पाँर लौ गई पछयानी, चित्त ठिकाने नइयाँ
गेवंड़े फसल देख अलबेली
जैसें दुलहिन नई नवेली
कोऊ संग न हो सहेली, दूर परदेस में घरवारौ,
सुबह ज्यों मिंहदी के हाथ, किरन सौ गोरौ गोरौ जात, साँस सी पुरुवाई
खबर घर की आई।

संदर्भ- यह कविता 'लगा रऔ कुकरा कबसें टेर' नामक शीर्षक से बुंदेली के प्रसिद्ध कवि संतोष सिंह 'बुंदेला' द्वारा रचित है।

प्रसंग- इस कविता में कवि ने सुबह का चित्रण किया है। ऐसी सुबह जिसकी वजह से किसी नई नवेली दुल्हन की रात बर्बाद हो गई। इसे कवि ने अपने अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है।

व्याख्या- इस कविता में कवि कह रहा है कि सुबह-सुबह मुर्गे ने बाँग दे दी है और इसका मतलब सुबह हो गई है। सास नीचे से बहू को आवाज लगा रही है कि अब और अधिक न देर करो अब तो सुबह हो गई है। गाँव की सुबह के क्रियाकलापों (जिसे पसर कहते हैं) के लिए देर हो रही है। देखो सुबह की लालिमा दिखाई देने लगी है अब भी तुम न उठोगी

तो हम तुम्हें पटक देंगे। बाहर भैंसें खड़ी है और गायें भी खड़ी हैं जिनको चराने हेतु ले जाना है। बूढ़ी अम्मा ने जैसे ही मुर्गे की बाँग सुनी उसने अपने लड़के पर चिल्लाना शुरू कर दिया। वहाँ पर सो रही बहू मन ही मन सोच रही थी कि काश, रात अभी और रुक जाए। अभी दिन को डूबते अधिक देर नहीं हुई है फिर भगवान सुबह को जल्दी क्यों भेज देते हैं। अभी दीपक का तेल भी नहीं खत्म हुआ कि जाओ और भैंसों का चारा लेकर आओ। अभी पति से कुछ बात भी न हो पाई और बाई (सास) है कि जल्दी मचा रही है, ऐसा भी क्या है जो दूसरों की पीड़ा न जाने और अपनी बात ही हठपूर्वक मनवायें। रातें भी आजकल छोटी हो चली हैं और अम्माजी है कि पागल हो चली हैं।

बहू आगे कहती है कि लगता है मुर्गा मेरा दुश्मन हो गया है। श्यामा गाय लगता है नई है। वह खाने में बहुत जल्दी जल्दी रम्भा रही है। अभी तो बहुत रात शेष है और गलियों में भी अंधेरा है और ये जो पसर मसर की बात है वह मुझे बिल्कुल भी पसंद नहीं है, फिर अकेली जाने में मुझे डर लगता है और मेरा दिल घबराता है। तभी बहू ने बिस्तर छोड़कर कपड़े बदले और फिर दमरु (अपने पति) के बारे में मन ही मन सोचती जा रही और कहती जा रही है कि हम ये हीरे जैसी सुन्दर रातें गाय-भैंसों के साथ बिता रहे हैं। करौली भैंस को काला साँप डस जाए क्योंकि उसे यह पसर नहीं सुहाती है। अर्थात यह करौली (भैंसों को चराना) हमें बिल्कुल नहीं सुहाता है और इसकी वजह से मेरी रातें बर्बाद हो रही हैं। यदि मैं अम्मा से कहता हूँ तो अभी झगड़ा हो जाएगा क्योंकि अभी नये-नये अनाज से भरे हुए खेत हैं उनको देखकर मेरा मन ललचाता है। अकेले क्या करूँ मेरी समझ नहीं आ रहा है, सब मन ही सोच रहा है। फिर उसने बेमन से दरवाजे खोले, भैंसें और गायें निकालीं। फिर पौर तक पीछे चली गई। अभी भी उसका मन सही नहीं है। वह एक नई नवेली दुल्हन है, जिसको देखकर गेवंड़े की अलबेली लहराती हुई फसल की याद आती है। उसके संग कोई भी नहीं है, न ही कोई सहेली है, उसका दूर परदेश में घरबार है, सुबह-सुबह सूर्य की लालिमा में उसके मेंहदी लगे हाथ चमक रहे हैं। उसी समय जैसे ही पूर्वी ठंडी हवा चली तो उसे अपनी सास की और घर की याद आई और वह फिर से सचेत हो गई।

हमारे रमटेरा की तान

(1) हमारे रमटेरा की तान,
समझ लो तीरथ को प्रस्थान,
जात है बूढ़े, बालै ज्वान, जहाँ पै लाल ध्वजा फहरायँ।
नग नग देह फरक वै भइया जौ दीवाली गायें।
दीवारी आई है।
उमंगै लाई है।

संदर्भ– प्रस्तुत पद्य खण्ड श्री संतोष सिंह बुन्देला द्वारा रचित गीत 'हमारे रमटेरा की तान' से लिया गया है।

प्रसंग– रमटेरा की तान सुनते ही लोगों में उत्साह भर जाता है। इसी उमंग की यहाँ कवि ने चर्चा की है।

व्याख्या– रमटेरा एक प्रकार का वाद्य है जिसे फूँक मार कर बजाया जाता है। बुन्देलखण्ड के भीतरी अंचल में ये अभी भी पाया जाता है। इसे 'तुरही' भी कहते है। इसकी आवाज में एक विशेष प्रकार का आकर्षण होता है जिसे शब्दों में वर्णन नहीं कर सकते।

कवि कहता है कि हमारे रमटेरा की तान सुनते ही ऐसा महसूस होने लगता है जैसे किसी तीर्थ यात्रा के लिये प्रस्थान किया जा रहा हो। तीर्थ-स्थान पर जाकर जैसे बूढ़े, बालक और युवा लाल रंग का झण्डा फहरायेंगे।

रमटेरा की तान सुनते ही शरीर का नग-नग फड़कने लगता है और दीपावली के गीत गाने लगते हैं। कवि कहता है जैसे उमंग लेकर दीवाली आ गई है।

(5) आज दिवारी कै दिन नौनी लगै रात अँधियारी,
मानौ काछी की बिटिया नै पैरी जरी की सारी।
मोनियाँ नचौ छुटक कै खौर,
कि जैसे बन में नाचै मौर,
दिवारी गावैं कर-कर शोर, कि भइया बिन बछड़ा की गाय।
बिन भइया की बहिन बिचारी गली बिसूरत जाय।
भाई दौज आई है,
कि टीका लाई है।

संदर्भ– पूर्वानुसार।

प्रसंग– दीवाली त्यौहार के वातावरण का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि दिवाली के दिन अंधेरी रात भी अच्छी लगती है। जगमगाती दिवाली मन में उमंग भर देती है मानो काछी की बिटिया ने जरी की साड़ी पहन ली हो। कवि का भाव ये है कि काछी जैसी गरीब जाति की बिटिया, जिसे अच्छे कपड़े देखने को भी न मिले, जरी की साड़ी पहन कर प्रसन्नता का अनुभव कर रही हो। मन-मयूर नाचने लगा जैसे जंगल में मोर नाच रहा हो। जोर-जोर से दिवाली के गीत गाये जा रहे हों। जिस प्रकार बिना बछड़े के गाय दुःखी हो जाती है उसी तरह बिना भाई के बिचारी बहन रास्ते में रोती चली जाती है। भाई दौज पर जब बहन घर आती है तो टीका लेकर आती है।

(6) आन लगै दिन ललित बसन्ती फाग काउ नै गाई।
ढुलक नगड़िया बजी समझ लो कै अब होरी आई।।
बजावै झाँजै, झेला, चंग,
नचत नर-नारी मिलकर संग
रँगे तन रँग गये है मन रंग, कहरवा जब रमसइँया गाय
पतरी कमर बूंदा बागी, सपनन मोद दिखाय।
अ र र र र होरी है,
स र र र र होरी है।

संदर्भ– पूर्वानुसार।

प्रसंग– इस पद्य में होली के त्यौहार की मस्ती का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कवि के अनुसार होली के अवसर पर सुन्दर, सुहावने बसन्ती मौसम के दिन आ गये हैं। ऐसे समय में किसी ने फाग गाना प्रारम्भ कर दिया है। जब ढोलक और नगड़ियाँ बजने लगे तो समझ लो कि होली आ गई है। इसके अतिरिक्त झांज, सेला और चंग नाम के बाजे भी बजाये जा रहे हैं। ऐसी मस्ती के समय आदमी और स्त्रियाँ साथ मिलकर नाच रहीं हैं। जब रमसइयां कहरवा धुन पर गीत गाता है तो लोगों के तन के साथ–साथ मन भी रंग जाते हैं। ऐसे सुहावने और मस्ती भरे वातावरण में पतली कमर और माथे पर बुन्दा पहने नायिका स्वप्न में दिखाई देने लगती है। लोग कह उठते हैं कि देखो होली आ गई है।

(7) **गाई चैतुअन नै बिलवाई चैत काटवै जावैं।**
सोनै चाँदी की नदिया–सी पिसी, जवा लहरावैं॥
दिखावैं अम्मन ऊपर मौर
मौर पर गुँजारत हैं भौंर
कि मानौ तनै सुनहरै चौर, मौर की सुन्दर छटा दिखाय
चलत लहरिया वा व चुनरिया उड़ उड़ तन सै जाय॥
गुलैलै ना मारौ,
लैंय का तुमहारौ।

संदर्भ– पूर्वानुसार।

प्रसंग– यहाँ होली बीतने के बाद चैत के मौसम का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– चैत के महीने में फसल की कटाई करने वाले मजदूर चैतुआ कहलाते हैं। कवि कहता है कि गीत गा गा कर फसल काटने के लिये मजदूर जाते रहते हैं। खेतों में पिसी (छोटे आकार का गेहूँ) और जवा धूप में सोने और चाँदी के समान चमक रही है। आम के वृक्षों पर बौर आ गया है जिस पर भँवरे मँडराने लगे हैं। अतः ऐसा लगता है मानो बौर की सुन्दरता देख कर सुनहरे चोर तैयार बैठे हैं। हवा तेजी से चल रही है जिसके कारण शरीर से चुनरिया उड़–उड़ जा रही है। पक्षियों को गुलेल मार कर मत भगाओ वो तुम्हारा क्या ले रहे हैं। गुलेल (Y) अंग्रेजी के वाय आकार की लकड़ी में खर की दो पट्टियां बाँध कर लगाते हैं जिसमें कंकड़ रख कर काफी दूर तक फेंका जा सकता है इसे गुलेल कहते हैं।

(8) **गाँय बुन्देला दैशा कै हौ ब्याह की वैला आई।**
ब्याहन आये जनक जू कै घर, तिरियन गारी गाई॥
करै कन्या के पीरे हाथ,
कि मामा लै कैं आयै भात,
वराती हौ गयै सकल सनात, विदा की बेला नीर वहाँय
छूट चले बाबुल तोरे आँगन, दूर परी हौं जाय॥
अवर मौरी लैयरईयौं,
भूल मौय न जईयौ।

संदर्भ– पूर्वानुसार।

प्रसंग– यहाँ बुन्देलखण्ड में विवाह के रीति–रिवाज का चित्रण किया गया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि बुन्देलखण्ड में जब विवाह का अवसर आता है तो लोगों द्वारा गीत गाये जाते हैं। कवि ने रूपक बाँधते हुये कहा है कि जैसे श्रीराम के विवाह में जनकजी के यहाँ कन्या पक्ष की स्त्रियों ने 'गारी' नामक गीत गाये थे। 'गारी' बुन्देलखण्ड में भी गाई जाती हैं। 'गारी' में वर पक्ष पर व्यंगोक्ति की वर्षा की जाती है। इस तरह कन्या के पीले हाथ किये जाते हैं अर्थात् कन्या का विवाह किया जाता है। इस अवसर पर कन्या के मामा 'भात' लेकर आते हैं। भात में कपड़े, बर्तन और नगद रुपये आदि सामान कन्या के हाथ पर रखकर दान करते हैं। बारातियों का खूब सेवा–सत्कार किया जाता है। इसके बाद कन्या की विदा की जाती है। विदा का समय बड़ा कारूणिक होता है। कन्या पक्ष अश्रुपूरित नेत्रों और भारी हृदय से अपनी बेटी की विदा करते हैं। कन्या भी दुःख के सागर में डूबती–उतराती सोचती है कि अब तो बाबुल का घर छूट जायेगा और कहीं दूर जाना होगा। कन्या अपने घर के सभी लोगों से कहती है कि मेरी खोज–खबर लेते रहना, मुझे भूल मत जाना।

(9) **बरसन लागै कारै बदरा आन लगौ चौ मासौ।**
बाबुल कै घर दूर बसत हैं, जी मैं लगौं घुनासौ॥
उमड़ौ भाई बहन कौ प्यार।
कि बिटिया छौड़ चली ससुराल।
है आ गऔ सावन कौ त्यौहार कि भइया राखी लेव बंदाय।
माँगै भावी दैवौं नौरता खाँ फिर लियौ बुलाय॥
और कछु नई चानै,
हमैं इतनई कानै।

संदर्भ– पूर्वानुसार।

प्रसंग– इस पद्य में कवि ने वर्षा ऋतु और श्रावण के त्यौहार का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि अब तो काले बादल बरसने लगे हैं और 'चौमासा' प्रारम्भ हो गया है। बुन्देली अंचल में बरसात के चार माह को चौमासा कहते हैं। इस समय विवाहित लड़कियों को अपने मयके की याद सताती है। वे सोचती हैं कि पिता का घर बहुत दूर है और मन में याद–रूपी घुन लगा हुआ है अर्थात् मन व्याकुल हो रहा है। इसी समय श्रावन का त्यौहार आ जाता है और भाई के मन में बहन के प्रति प्यार उमड़ने लगता है। भाई बहन को लेने जाता है और बहन कुछ दिनों के लिये ससुराल छोड़कर अपने पिता के घर आ जाती है। वह अपने भाई को राखी बाँधती है। वह अपनी भाभी से कहती है कि अब जब लड़कियाँ नौरता की पूजा करें तब उसे फिर बुला लेना। उसका बस इतना ही कहना है और वह कुछ नहीं चाहती।

बुन्देली अंचल में नौरता का बड़ा महत्व है। इसे क्वांरी लड़कियाँ खेलती है। गोबर से दीवार पर एक आकृति बनाती हैं, उसे सजाती हैं और उसका विवाह 'झांजी' के साथ किया जाता है।

सागर तरइयाँ कीनें गिन लइ कीनें बाँचे भाग

(10) सागर तरइयाँ कीनें गिन लइ कीनें बाँचे भाग
सागर तरइयाँ कीनें गिन लइ कीनें बाँचे भाग।
कीनें मनखां बादो जानै को अंतर की आग।।
भाई रे कोऊ काऊको नइयाँ।
ए दुनियाँ है बदली की छइयाँ।।
जिन साँसन में कभऊँ मिलीती गंध कुसुम केसर की।
रात दिना मन हथक हतो छवि बरतन बिंदिया बेसर की।।
आज बा सांस समीर नहीं।
अपनी काऊ खाँ पीर नहीं।।
जो जग की मनमोहक बातें हैं, सब भूल भुलैयाँ।
भाई रे कोऊ काऊ कौ नइयाँ।।
हंस मिल बोल बैठ लो सबसे दो दिन को है मेला।
जा दुनियाँ सपने की सम्पत जै है अंत अकेला।।
आनी जानी स्वासा है।
ए जीवन बार बतासा है।
जानै तोरे तन तरुवर की, कब उड़ जाँय चिरइयाँ।
भाई रे कोऊ काऊ नइयाँ।।

संदर्भ– यह कविता 'सग्ग तरइयाँ कीनें गिन लइ' बुंदेली भाषा के प्रसिद्ध कवि संतोष सिंह 'बुंदेला' द्वारा रचित है।

प्रसंग– कवि ने इसमें जगत के सार के बारे में वर्णन हुए कहा है कि जगत में कोई किसी का नहीं है। यहाँ सब भ्रम है।

व्याख्या– कवि कहता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के तारों को किसने गिन लिया अर्थात् किसी ने भी नहीं और ऐसा कौन है जिसने भाग (भाग्य) को बांच (पढ़) लिया है। ऐसा कौन है जिसने अपने मन को अपने वश में कर लिया अथवा अपने अन्दर की आग को वश में कर लिया हो। यह केवल स्वयं उसी के द्वारा जाना जा सकता है। अतः इस दुनिया में कोई किसी का नहीं है और यह दुनिया बदल जाने वाली छइयां अर्थात् खिलौना है। जिन सांसों में कभी मधुर केसर की गंध मिली थी और रात-दिन मन माथे की बिन्दी और बेसर को देखने में रम गया था, आज वह सांस और हवा नहीं है। मेरी जो पीड़ा है उसकी चिंता किसी को नहीं है। ये जो संसार की सुन्दर मन को मोहने वाली बाते हैं वह सब भूल भूलैयां हैं। इस दुनिया में कोई किसी का नहीं है। अतः सभी लोग दो चार दिन हँसकर बोल लो और मिल बैठ लो, यह कुछ ही दिनो का मेला है। यह संसार तो सब सपनों का है अन्त में आदमी को अकेला ही रह जाना है। अर्थात् अन्त में केवल आत्मा के सभी मोह बंधन टूट जाते हैं और सिर्फ ईश्वर मिलन ही शेष रह जाता है। आगे कवि कहता है कि यह सांस तो आनी जानी है और जीवन एक मीठा बताशा है जिसको एक न एक दिन घुल ही जाना है। तुम्हें स्वय ही पता नहीं कि तुम्हारे इस शरीर रूपी वृक्ष से कब प्राण रूपी चिड़िया उड़ जाए। इसीलिए आदमी को अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए और न ही अधिक मोह रखना चाहिए क्योंकि इस संसार में कोई किसी का नहीं है। किसी को किसी से कोई मतलब नहीं है।

4. माधव शुक्ल 'मनोज'

हाथ उठा चौकन्ना से

(1) बड़ी रसीली कहाँ गई रातें,
कहाँ गये वे दिन गन्ना से।
इतै उतै हम फिरतई रै गये,
हाथ उठा चौकन्ना से।
आसमान आसा पै टाँगें,
निकर गये निस दिन चौमासे।
चौपर-सी जा नल की बाजी
परे न अब लों सीधे पाँसे।
घूरे के दिन फिर गये तो भी,
ऊँसई के ऊँसई हम रये।
बड़े-बड़ों के आगे हम तो,
फिक गये एक अधन्ना से।
इतै उतै हम फिरतई रै गये,
हाथ उठा चौकन्ना से।
आसा कौ मैदान दूधिया,
जामें हँसे चंदनियाँ-सी।
भर-भर खूब कुलाँचें मारे,
ममता जहाँ हिरनियाँ सी।
कहूँ पै बज गई बीन मुरलिया,
नटिया और बहेलिया की।
हम हाथों की एक दुलकिया,
बज गये तिक तिक धिन्ना से।
इतै-उतै हम फिरतई रै गये,
हाथ उठा चौकन्ना से।
लगे नोन-सी जा जिंदगानी,
बातें फोकी गाजर सी।
ऊँसई सी जा लगन लगी है,
दुनियां जूटी पातर-सी।
लैं लैं खूब करोंटा काटीं
सब रातें भुनसारें खो।
खुली-खुली सी पोथी रै गई
उलट गये हम पन्ना से।

इतै–उतै हम फिरतई रै गये,
हाट उठा चौकन्ना से।
लटके रै गये रोटा सपनें
पक गई साँसें रमुआँ की।
अरथी बँधन लगी वे मौसम,
बीस बरस के धुआँ की।
फरी न फूलीं जे तिसनाए
घुट गये घर के धुआँ में।
हम खुटियन पै लटके रै गये
फटे पुराने उन्ना से।
इतै–उतै हम फिरतई रै गये,
हाथ उठा चौकन्ना से।

संदर्भ– प्रस्तुत कविता माधव शुक्ल 'मनोज' द्वारा रचित है।

प्रसंग– इस कविता में कवि ने बुंदेलखंडी समाज की प्रगति और विकास की नकली कहानी का वास्तविक चित्रण किया है और बुंदेलखंडी समाज की विकराल होती जा रही समस्याओं को भी उभारा है।

व्याख्या– माधव शुक्ल 'मनोज' बुंदेली चेतना के श्रेष्ठ कवि हैं। कवि बुंदेलखंडी समाज के अच्छे दिनों के बदल जाने तथा अनेक समस्याओं से घिरने का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि खुशहाल जीवन की वो सुकून देने वाली रसीली रातें कहाँ गई और गन्ने जैसे मीठे दिन आज कहाँ खो हो गए? आज हम बेरोजगारी, अशिक्षा, पेयजल जैसी समस्याओं से घिर गए हैं। राजनीति के जंजाल और भ्रष्टाचार के चलते हम सतर्कता से आगे बढ़ रहे थे, फिर भी हमारे बुंदेलखंड और हमारा विकास नहीं हो पाया।

कवि किसानों की समस्या का वर्णन करते हुए कह रहा है कि इस वर्ष भी वर्षा की उम्मीद करते हुए पूरा चौमासा (वर्षा ऋतु) निकल गया। अब तक एक बूंद भी नहीं बरसी। ऐसा लगता है मानो इस साल भी सूखा (अकाल) पड़ जाएगा। यह कैसी विडम्बना है। नल से पानी आना भी बंद हो गया है क्योंकि भूमिगत जल का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। गोबर के भी दिन फिर गए हैं क्योंकि वह गोबर से खाद में तब्दील हो गया लेकिन हम लोग वैसे के वैसे ही रह गए। बारिश के बिना खेत भी बोया नहीं जा सकता। बड़े–बड़े साहूकारों के आगे हम कर्जा लेने के लिए हाथ जोड़कर गिड़गिड़ा रहे हैं। बुंदेलखंडी किसानों की दशा इतनी खराब हो गई है। दुनिया ने बहुत तरक्की कर ली है लेकिन हम बहुत पीछे रह गए हैं। इधर–उधर भटकते रहने के कारण हम दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाकर चल तक नहीं पा रहे हैं।

बुंदेलखंड के किसानों की समस्या, स्वच्छ ईंधन और शुद्ध पेयजल की समस्या का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं कि आशा और विश्वास हमें दूध की भांति ताकत देने वाला है जो हमें चांदनी रात में हँसाता है। बुंदेलखंड में इतनी गरीबी के बावजूद भी बच्चा माँ की गोद में खुशी–खुशी सो जाता है। कहीं पर कृष्ण की मुरली बज कर सुख बांट रही है और यहाँ हमें

कोई बहेलियों की भाँति नोच–खसोट रहा है। हम बुंदेली, ढोलक की तरह बज रहे हैं अर्थात् समस्याओं से नहीं निकल पा रहे हैं और चिन्ताओं से घिरे हुए हैं।

हमारी जिंदगी नमक की तरह सस्ती और खारी हो गई है। नेताओं की बातें गाजर–मूली की भाँति जुमले हो गए हैं। न जाने हम लोगों का जीवन कैसे व्यतीत होगा। यह चिन्ता हमें खाये जा रही है। यह दुनिया हमें जूठी पत्तल की तरह लगने लगी है। रात में बिजली चली जाने तथा मच्छरों के काटने के कारण नींद नहीं आती है। रातभर करवटें बदल कर गुजारनी पड़ती हैं। नेताओं के वादे और सरकार की योजनाएँ केवल कागजों में ही पूरे होते हैं। असल जीवन में कुछ भी परिवर्तन नहीं हो रहा है। हम आज तक जीवन की मूलभूत सुविधाओं से वंचित रह गए हैं। हमारे विकास की फाइलों में सिर्फ खानापूर्ति के लिए पन्ने भरे गए हैं। हम लोग इधर–उधर फिरते रह गए हैं। इसलिए अब हमें सतर्क होकर अपने हाथ ऊपर उठाने हैं। अर्थात् बदलाव हेतु अपनी कमर कस लेना है।

हमारे सपने अधूरे रह गए हैं। बीस साल के धुनवा नामक किसान की कर्ज और बेरोजगारी से मौत हो गई है (यह बेहद पीड़ादायी घटना है। यह हमारे समाज की सबसे बड़ी त्रासदी है) रमुआ नाम के मजदूर की भी सांसें फूलने लगी हैं। फैक्ट्रियों से निकलने वाले जहरीले धुएं से वायु प्रदूषण की समस्या भी बढ़ गई है। सांस लेने के लिए स्वच्छ हवा नहीं बची है। बुंदेली गृहिणियाँ कहती हैं कि लकड़ियों के ईंधन से भोजन पकाते–पकाते धुएं से हमारा दम घुटने लगा है। हमें अब स्वच्छ ईंधन की आवश्यकता है। हम फटे–पुराने कपड़ों जिनका उपयोग सफाई के कामों के लिए किया जाता है जैसे से हो गए हैं। हम मात्र कठपुतली बनकर रह गए हैं। अब हम सतर्कतापूर्वक अपने विकास के मार्ग पर चलना चाहते है।

विशेष– इस कविता में

(1) बुंदेलखंड की विकराल समस्याओं का वास्तविक चित्रण है।
(2) नेता लोगों ने बुंदेलखंडियों का केवल इस्तेमाल ही किया है, उनके विकास के बारे में कभी नहीं सोचा है।
(3) कवि ने प्रतीकात्मक रूप में इस कविता में अनेक सामाजिक समस्याओं को उभारने का प्रयास किया है।
(4) इस कविता में टोटके, बम्बों और रूपकों का प्रयोग किया गया है।

नीले बसंती आ गये दिना

(2) बजी दुलकिया तिक–तिक बिन्ना,
नीके बसंती आ गये दिना।
सपनों की क्यारी में झूमे सुमन
मुस्कावे अँखियन में नीलो गगन।
अँगना में इटलाके फूलें पलाश,
नीके बसंती आ गये दिना
धरती मगन है, मौसम मगन,
गेहूं की बालों पै नाची पवन।
हरिया के बुंटन लगी बना,
नीके बसंती आ गये दिना।

जीवन में जीवे की लागी लगन,
खुशबू में महँकन लगी है चमन।
मौसम बलाउन लगौ झुनझुना,
के बसंती आ गये दिना।

संदर्भ एवं प्रसंग– इस कविता में माधव शुक्ल 'मनोज' ने बुंदेलखंड अंचल में बसंत ऋतु के दिनों का चित्रण है। इस कविता में कवि ने गाँव की लोक-संस्कृति का सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

व्याख्या– बुंदेली कवि माधव जी बसंत ऋतु में बुंदेलखंड अंचल की लोक संस्कृति का चित्रण करते हुए कह रहे हैं कि बसंत के अच्छे दिन आ गए हैं। युवक-युवतियों और प्रेमी-प्रेमिकाओं के सपनों की क्यारी में फूल खिल रहे हैं अर्थात् बसंत में राग-रंग का आनंद सभी जन उठा रहे हैं। संगीत सम्मेलनों मे ढोलक की धुन 'तिक-तिक धिन्ना' बज रही है और इस धुन मे मग्न होकर सभी लोग नृत्य कर रहे हैं।

अंबर में धरती और प्रेमिका इठला रही है और प्रेम की खुशी मे झूम उठी है। आसमान की तरह नीली-नीली सुन्दर आँखें भी चमक रही हैं। अपनी मुस्कुराहट बिखेर रही हैं।

बसंत के अच्छे दिनों में प्रकृति के सौन्दर्य में धरती भी मग्न है और मौसम भी मग्न है। इस सुहावने मौसम में हर कोई खुशी मना रहा है। तेज हवा के वेग के कारण खेतों में लगी गेहूँ की बालियाँ नाचती हुई प्रतीत हो रही है और चने के बूंटों को तोते चुन-चुन कर खा रहे हैं अर्थात् बसंत में खेत लहलहा रहे हैं।

बसंत के अच्छे दिनों में, सभी की जिन्दगी में नई उमंगें जाग चुकी हैं। सभी जनों को जीवन जीने की लगन लग गई है अर्थात् हर कोई अच्छी और खुशहाल जिन्दगी जीना चाह रहा है। यह सुहावना मौसम झुनझुने की भाँति सबको अपनी ओर खींच रहा है। फूलों की खुशबू से वातावरण महकने लगा है अर्थात् बसंत के अच्छे दिनों में, सबका जीवन खुशहाल हो गया है।

विशेष–
(1) कविता में बसंत के मौसम में बुंदेलखंड अंचल के लोक जीवन का चित्रण है।
(2) प्रकृति-सौन्दर्य की छटा बिखरी दिखाई दे रही है।
(3) भाषा साहित्यिक बुंदेली है। कविता में ठेठ बुंदेली शब्दों का प्रयोग हुआ है।
(4) कविता में लोकगीत शैली है और संगीतात्मकता, लयात्मकता और सरलता है।

(3) फागुन आ गओ,
[illegible]
हो गई जा धूरा गुलाल पिया।

हो गई जा धूरा गुलाल पिया
चल रई है पुरवैया लैकें अँधूरा,
लग रई है माथे पै मौसम की धूरा,
मिल जुर कें सब कोऊ गाउत है फागें,
मिट गओ है मन को मलाल पिया,
हो गई जा धूरा गुलाल पिया।
हँस रई चिरौंजी सी दाँतों की पाँतें,
मिसरी सी मीठी हैं सब काऊ की बातें,
उठकें उमंगों पै डोलत-फिरत हैं,
कोऊ अब नइयाँ अलाल पिया,
हो गई जा धूरा गुलाल पिया।
टेसू भी फूले, सेमर भी फूली,
आगत के सपनों में आषायें झूलीं।
बासंती रंगों में रंग ई जा देहिरा,
मुखड़ा रंगीलौ निकाल पिया,
हो गई जा धूरा गुलाल पिया।।

संदर्भ– प्रसिद्ध बुंदेली कवि माधव शुक्ल 'मनोज' द्वारा रचित यह कविता 'फागुना आ गओ' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– कवि ने इस कविता में बुंदेलखंड अंचल के फाल्गुन माह के सौन्दर्य का वर्णन किया है। कवि ने फाल्गुन माह में किसान दम्पत्ति और ग्रामीणों में जिस तरह खुशी का भाव उत्पन्न होता है, उस भाव का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या– कवि फाल्गुन में अखंड बुंदेलखंड की प्राकृतिक सुन्दरता का वर्णन किसान दम्पत्ति के माध्यम से कर रहे हैं। किसान की पत्नी अपने पति से कह रही है, हे प्रिय! फाल्गुन आ गया है चारों तरफ प्रकृति के नवरंगों का सौन्दर्य बिखर गया है। बसंती मौसम मन को लुभा रहा है। यहाँ की धूल गुलाल बन गई है अर्थात् फाल्गुन महीने का मौसम राग-रंग मनाने का मौसम बन गया है।

फाल्गुन में प्रकृति मे होने वाले परिवर्तनो का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि आम के पेड़ पर कोयलें कूँक रही है। कोयलों की कूँकनी की मधुर आवाज बड़ी ही मनभावन लग रही है। खेतों में फसलें पककर तैयार हो गई हैं। सरसों के खेतों में पीले फूल लहलहाते हुए बड़े ही मनोहक लग रहे हैं।

गाँवों की चौपालों व चबूतरों पर सुख-दुख चर्चा करते हुए लोग नृत्य करते हुए आनंदित हो रहे है क्योंकि इस साल फसल बहुत बढ़िया हुई है। सबके मन गुलाब की भाँति खिल गए हैं। सारे किसान खुशी मे झूम रहे है।

अब मौसम बड़ा सुहावना हो गया है, पुरवैया हवा चल रही है। माथे पर मौसम की धूल लग रही है अर्थात् इस सुहावने मौसम में धूल भी गुलाल प्रतीत हो रही है।

कवि इस कविता के माध्यम से बुंदेलखंड के प्रमुख त्योहार फाग के दौरान लोकजीवन का चित्रण करते हुए कहते हैं कि यहाँ की कृषि प्रधान लोक-संस्कृति में पले-बढ़े लोगों में 'संतोष की भावना' अधिक है। बुंदेलखंड के पर्वतों, नदियों का सौन्दर्य देखते ही बनता है। हवाओं से क्रीड़ा करती, लहलहाती यहाँ की फसलों में 'स्वच्छ श्रृंगार' की प्रवृत्ति है। गाँव में सभी लोग मिल-जुलकर नाच-गा रहे हैं, खुशियाँ मना रहे हैं अर्थात् फाग का त्योहार बुंदेलखंड के ग्रामीण इलाके में बड़े ही धूमधाम और पारम्परिक तरीके से मनाया जा रहा है। किसान की पत्नियाँ अपने पतियों से कह रही हैं कि हे प्रिय! अब तो मन का मलाल भी मिट गया है क्योंकि धूल गुलाल जैसी पवित्र हो गई है।

सभी जन चिरौंजी की तरह अपनी बत्तीसी दिखाकर दिल खोलकर हँस रहे हैं। सब लोगों की बातें मिसरी की भाँति मीठी लग रही हैं और मन को शांति प्रदान कर रही हैं। कोई भी दुःखी या परेशान नहीं दिखाई दे रहा है। सभी लोग नई उमंगों के साथ झूम रहे हैं।

टेसू के भी लाल-पीले फूल खिल गए हैं, जिनसे रंग बनाकर फाग (होली) खेलते हैं अपने खेत पर नदी किनारे लगे सेमल में भी फूल लग गए हैं, जो बहुत ही सुन्दर लग रहे हैं। प्रिय! बसंती रंग चारों ओर बिखर गया है। सपनों में आशाएँ लेकर झूलने लगे हैं। अब प्रिय प्यारे अपना रंगीला-खूबसूरत मुखड़ा निकाल लो अब हम भी फाल्गुनी मौसम में राग-रंग का आनंद उठाएँ।

विशेष–

(1) कविता में फाल्गुन माह के समय बुंदेलखंड के लोकजीवन का वास्तविक चित्रण किया गया है।

(2) प्रकृति का भी मनमोहक चित्रण हुआ है।

(3) भाषा मानक बुंदेली है। इसमें ठेठ बुंदेली शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

(4) लोकगीत शैली है। जिसमें लयात्मकता, संगीतात्मकता और गेयता है।

कब से देखूँ बाट पिया की

(4) कब से देखूँ बाट पिया की लौट अबहूँ नहिं आये रे
झर गई चम्पा, झर गई बेला, झर गये फूल कनेरा रे।
राह देखती बाट जोहती,
देखूँ कौन डगरिया रे।
फरर फरर पुरवैया वैरिन,
खींचे रोज चुनरिया रे।
पोरा गिन गिन तड़पूँ तुम बिन,
सूनी सेज सिजरिया रे।
नहीं सुहावै पनघट कुइया,
भरी न जाय गगरिया रे।
कटे न काटे कटतीं रतियाँ,
दूभर हो गई निंदिया रे।
अँधियारे में बड़ी चिलक-

फीकी हो गई बिंदिया रे।
कहूँ कौन से बात हिया की, लौट अबहुँ नहिं आये रे।
झर गई चम्पा, झर गई बेला, झर गये फूल कनेरा रे।
ना कोऊ घर में देखे परखे
मोरी नई उमरिया रे।
आज फूल-सी मैं कुमला गई
तरसत नाहिं सँवरिया रे।
गोरी थी सो साँवरी हो गई
तानें देत जिठनियाँ रे।
भई दूबरी ढीली हो गई
कम्मर की करधनियाँ रे
चर्चा करें पड़ौसन गुइयाँ
मैं बिरहा की मारी रे।
रोज चिढ़ावै ननद नवेली
मैं लाजवंती हारी रे।
मन ही मन में रही जिया की, लौट अबहुँ नहिं आये रे।
झर गई चम्पा, झर गई बेला, झर गये फूल कनेरा रे।
प्यासे बैल पियें नहिं पानी
सून खेत मड़ैया रे।
द्वार सूँघती तुमें रँभाती
घर की सुरहन गैया रे।
नहिं पठायौ खबर संदेसौं
रम गये कहाँ रमैया रे।
लिये सुमरनी टेरूँ तुमखों
प्यारे भूमि भुमैया रे।
पूजूँ तुलसी को तुलसानो,
भर-भर नैन सुरतियाँ रे,
दिन डूबे तक दरवाजे की
खोले रहूँ किवरियाँ रे।
करूँ आरती साँझ दिया की, लौट अबहुँ नहिं आये रे।
झर गई चम्पा, झर गई बेला, झर गये फूल कनेरा रे।

संदर्भ– प्रस्तुत काव्यांश माधव शुक्ल 'मनोज' की 'कब से देखूँ बाट पिया की' नामक शीर्षक कविता से ली गई है।

प्रसंग– कवि ने इस कविता मे बुंदेलखंड की स्त्री की विरह व्यथा का मार्मिक चित्रण किया है। राजनैतिक उदासीनता के चलते बुंदेलखंड अंचल में बेरोजगारी की समस्या अपना विकराल रूप धारण कर चुकी है। यहां पर न तो सभी शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार मिल

पाता है और न ही अशिक्षित लोगों को। प्रत्येक तीन साल के अन्तराल में पूरे बुंदेलखंड में भयानक सूखा पड़ता है। इसलिए बुंदेलखंड के पुरुष अपने परिवार की आजीविका चलाने हेतु रोजगार की खोज में दिल्ली और हरियाणा की ओर पलायन कर जाते हैं।

व्याख्या– कवि कहते हैं कि प्रवासी निर्धन मजदूर किसान की पत्नि कह रही है– कबसे देखूँ बाट पिया को लौट अबहूँ नहि आए रे। अर्थात् मैं काफी दिनों से अपने पति के घर लौटने की प्रतीक्षा कर रही हूँ, लेकिन वो अभी तक नहीं आए हैं। पति की बाट जोहते–जोहते अब मेरी आँखो में झुर्रियां पड़ गई है। मेरी सुन्दरता चम्पा फूलों की तरह झड़ गई है और बेला की तरह मेरे लम्बे लम्बे बालों की सुगंध भी खत्म हो गई है। कनेर के फूल की भांति चेहरे की मुस्कान भी चली गई है। जिस प्रकार कनेर से उसके फूल झड़ जाने पर कनेर का पेड़ सौन्दर्यहीन हो जाता है। ठीक उसी प्रकार पति की विरह–वेदना के कारण मेरी सुन्दरता भी खत्म हो गई है। एक ओर तो मुझे विरह–वेदना है ही तो दूसरी ओर, घर में और बाहर भी मेहनत–मजदूरी का काम करना पड़ रहा है जिससे मेरी सुन्दरता नित–प्रति ढलती जा रही है।

वह कहती है– राह देखती रहती हूँ, बाट जोहती रहती हूँ लेकिन वो (पति) कहीं से आते दिखाई नहीं देते है। अब मै थक गई हूँ और कौनसी दूसरी राह में उनकी प्रतीक्षा करूँ?

प्रवासी व्यक्ति की पत्नि कहती है कि अब तो वसंत में चलने वाली पुरवाई (पूर्वी हवा) भी मुझे दुश्मन लगने लगी है, क्योंकि वसंत प्रेम बंधन के लिए सबसे अच्छा मौसम है। जब मेरे प्रियतम ही नहीं आए तो मैं इस सुहावने मौसम में किसके साथ राग–रंग मनाऊँ? हर रोज फरर फरर चलने वाली पुरवाई हवा में मेरी चुनरी उड़ जाती है। मुझे इस चुनरी को उठाने वाले अपने प्रियतम की प्रतीक्षा है।

हे प्रियतम! तुम्हारे बिना मैं रोजाना पोरा (उंगलियों के भाग) गिन–गिन कर तड़प रही हूँ। विरह–वेदना से व्यथित पत्नि आगे कहती है हे प्रियतम! आपके बिना अब पनघट की कुंइया (छोटा/सकरा कुआं) से पानी भरना भी अच्छा नहीं लग रहा है। मुझसे कुँइया से अब एक भी गगरी नहीं भरी जा रही। आप लौट आओ जल्दी, तभी मुझे चैन मिलेगा।

मुझे आपके बिना रातें बहुत लम्बी लग रही हैं और नींद भी नहीं आ रही है। मेरा सोना दूभर हो गया है। अंधेरे मे मेरे माथे पर चमकने वाली बिंदिया भी अब फीकी पड़ने लगी है। आप अब तक नहीं आए हैं, मैं किससे अपने हृदय की बात कहूँ? ये चिंता सता रही है। चम्पा, बेल और कनेर के फूल की तरह मेरी जवानी की सुन्दरता भी दिनोदिन फीकी पड़ती जा रही है।

घर मे कोई भी मेरी नई उमरिया (जवानी) को नहीं समझ रहा है। ससुराल में नई नवेली दुल्हन से पूर घर और बाहर का काम कराया जा रहा है। ससुराल के लोग सास–ससुर और ननद–देवर भी अपने हिस्से का काम मुझसे करा रहे हैं जिससे वह अपने आप को शोषित, पिंजड़े में बद पंछी की भाँति अनुभव कर रही है। वह अपने प्रियतम के लौट आने पर अपने दिल की सारी बात उनसे कह देना चाह रही है। वह आजादी के साथ सुखी जीवन जीना चाह रही है।

हे प्रियतम! आज मैं फूल–सी मुरझा गई हूँ। आपसे मिलने के लिए तरस रही हूँ। अच्छी गोरी थी, पर काम करते–करते साँवली पड़ गई हूँ। जेठानी हर रोज ताने मार रही है।

प्रियतम से शिकायत करते हुए वह कह रही है कि काम करते–करते मैं दुबली–पतली और कमजोर हो गई हूँ जिससे कमर की करधौनी भी ढीली हो गई है। पड़ोसी स्त्रियाँ बातें करती है कि मैं विरह की मारी हूँ। नई नवेली ननद मुझे रोज चिढ़ाती है। मैं लाजवंती बनकर इन सब से हार गई हूँ। मन ही मन में सब कुछ अच्छा–बुरा व्यवहार सहकर जी रही हूँ। लेकिन आप अब तक लौटकर नहीं आये है। मै आपके विरह मे हर रोज बिलखती रहती हूँ।

अपने प्रियतम से शिकायत करते हुए प्रवासी की पत्नि कह रही है कि प्यासे बैल पानी नहीं पीते है, खेत–खलिहान और घर–मड़ैया सभी सूने पड़े हैं क्योंकि इस साल फिर से सूखा पड़ा है। अपना गुजारा कैसे होगा? अपनी गाय दरवाजे पर आकर सूँघती है और तुम्हारे लिए रंभाती है। तुम्हारे बिना सब कुछ सूना पड़ा है। प्रियतम! अब तो लौट आओ।

मेरे प्यारे भूमि भूमिया रे! मै आपको अपने सपनों में, यादों में बुलाती हूँ। आपको वापस पाने के लिए तुलसी पर जल चढ़ाकर पूजा कर रही हूँ। आँखों में आँसू भरके नैन फूट–फूटकर रो रही हूँ। शाम तक किवाड़ (दरवाजा) खोले रखते हूं कि आप जाने कब और आएँ। रोज शाम को आरती करती हूँ कि मेरे पति अब जल्दी से लौट आएँ। भगवान जाने पति के साथ क्या हुआ? मैं चम्पा, बेला और कनेर के फूल की तरह मुरझा गई हूँ। विरह वेदना से पति बिन–प्रति सूखती जा रही है।

विशेष–

(1) पत्नि की विरह वेदना का मार्मिक चित्रण है।

(2) बुंदेलखंड की बेरोजगारी तथा सूखे की समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

(3) भाषा शैली उपदेशात्मक है। नारी शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई गई है।

अँगना के फूल खिला जइयो

(5) चले जइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
ऊपर है बादर, नीचे है धरती
धरती के भाग जगा जइयो।
चले जइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
बरखा की धारा, जहुआ जल पानी,
[illegible]

चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
खादी बिछौना, सादौ उढ़ौना,
सूती उसीसौ भरा जइयो,
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
गाँव के राजा, हौ तुम महाराजा,
गेहूँ कौ देस बना जइयो
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
पूरन से अइयो सो सब दिन रहियो
रैन जुन्हैया रहा जइयो।
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
छोटी सी धरती, बड़ौ अँधियारौ
मन कौ उजयारौ लगा जइयो,
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।

संदर्भ– यह पंक्तियाँ बुंदेली कवि माधव शुक्ल **'मनोज'** की कविता **'अँगना के फूल खिला जइयो'** से उद्धृत हैं।

प्रसंग– इस कविता में बुंदेलखंडी किसान भगवान से प्रार्थना कर रहा है कि अँगना के फूल खिला जइयो अर्थात् हे भगवान! हमें धन-धान्य से परिपूर्ण कर दो जिससे कि हम सुखमय जीवन बिता सकें।

व्याख्या– कवि माधव जी कहते हैं कि एक बुंदेलखंडी ग्रामीण किसान भगवान से प्रार्थना कर रहा है कि- हे भगवान! आकर हमारे आंगन के फूल खिला जाना अर्थात् हमें धन-धान्य से परिपूर्ण कर जाना। परती अर्थात् ऊसर भूमि को फिर से उपजाऊ कर जाना ताकि खेतों में अच्छी फसल हो सके।

पहाड़ों से जमुना की धारा को कभी बंद मत होने देना, उसे निरन्तर बहाए रखना। समतल भूमि में भी कभी पानी की कमी नहीं होने देना ताकि हमारी नैया पार हो सके।

हे भगवान! हमारे यहाँ आना और आंगन के फूल खिला जाना। मुझे विश्वास है कि आप हमारे परिवार को शाम सुबह खुशी से हँसातओगे।

अब किसान भगवान से प्रार्थना कर रहा है कि आप आकर मुझ गरीब किसान को अच्छे वस्त्र और रहन-सहन देकर जाना। बिस्तर के लिए खादी का बिछौना, पहनने के लिए सादा कमीज-कुर्ता और सूती पंचा और मुड़ाछा खरीदने लायक फसल की कीमत दिला जाना (क्योंकि किसान को अपनी फसलों के दाम इतने कम मिलते हैं, जिससे उनका ठीक से घर का खर्च भी नहीं चलता)।

किसान आगे कहता है– तुम गाँव के राजा हो, तुम ही महाराजा हो। तुम हमारे गाँव को गेहूँ का देश बना जाना ताकि कभी यहाँ खाद्यान्न की कमी न हो। हे भगवान! आप सुबह से आना और दिनभर हमारे यहाँ रहना। चाँदनी रात में हमारे साथ खेत पर नहाना जिससे फसल की सिंचाई हो जाये।

ये छोटी सी धरती है लेकिन यहाँ बड़ा अंधकार है। हमारे बुंदेलखंड में एक तो अज्ञान रूपी अंधकार है और दूसरा रूढ़िवादी सोच का और तीसरा शासन-प्रशासन द्वारा जनता के शोषण का, जिनका अन्त करना बहुत जरूरी है। हे भगवान! आपसे प्रार्थना है कि आकर, हमारे मन में अंधकार दूर करके ज्ञान का उजाला कर जाना ताकि हम लोग सुखमय जीवन बिता सकें।

विशेष–

(1) किसान-संस्कृति का मार्मिक चित्रण है।
(2) किसान की ईश्वर में गहन आस्था और अटूट विश्वास का वर्णन है।
(3) भाषा-ठेठ बुंदेली और शैली चित्रात्मक है।

इकाई-5

लघु एवं दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. जनजातीय भाषा क्या है? इसका इतिहास लिखिए।

अथवा

'आदिवासियत' अर्थात् आदिवासी दर्शन के तत्वों वाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। इस कथन की विवेचना कीजिये।

अथवा

आदिवासी साहित्य किसे कहते हैं? इसकी मुख्य विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर– आदिवासी साहित्य यानी आदिवासियों द्वारा लिखा गया विवरण जिसमें आदिवासी संस्कृति, दर्शन, जीवन-शैली, प्रकृति और उनकी समस्याओं का चित्रण हो, उसे आदिवासी साहित्य कहा जाता है। आदिवासी साहित्य अपने स्वयं के सुख के लिए नहीं लिखा जाता। यह प्रतिबद्ध साहित्य है और बदलाव के लिए कटिबद्ध है। आदिवासी साहित्य से आशय उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों का जीवन व समाज उनके दर्शन के अनुरूप व्यक्त हुआ है।

कुछ आदिवासी साहित्यकारों और लेखकों ने आदिवासी साहित्य को निम्नवत् परिभाषित किया है–

मराठी आदिवासी साहित्यकार डॉ. **विनायक तुमराम** के अनुसार- 'आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से सम्बन्धित साहित्य है। आदिवासी साहित्य वनों (जंगलों) में रहने वाले उन वंचितों का साहित्य है, जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है, जिनके आक्रोश पर मुख्यधारा की समाज-व्यवस्था ने कान ही नहीं धरे। यह गिरि-कन्दराओं में रहने वाले अन्याय ग्रस्तों का क्रान्ति साहित्य है। सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्याय-व्यवस्था ने जिनकी सैकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया, आदिवासी साहित्य। उस आदिम समूह का मुक्ति-साहित्य है- वनवासियों का क्षत जीवन, जिस संस्कृति

की गोद में छुपा रहा, यह साहित्य। उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की खोज है आदिवासी साहित्य इस भूमि से प्रसूत आदिम वेदना तथा अनुभव का शब्द रूप है।'

आदिवासी कथाकार **रूपलाल बेदिया** के अनुसार 'अगर आदिवासी विषय, दर्शन, संस्कृति के अनुकूल साहित्य गैर आदिवासी लेखक भी लिखते हैं तो उसे आदिवासी साहित्य मानना चाहिए। हमारी वाचिक परम्परा में जो समृद्ध साहित्य है उससे बाहरी समाज के लेखक परिचित नहीं है। उन्हें लिखित रूप में सामने लाने की आवश्यकता है।'

प्रसिद्ध आदिवासी एक्टीविस्ट तथा कवयित्री **रमणिका गुप्ता** के अनुसार 'मैं आदिवासी साहित्य उसी को मानती हूँ जो आदिवासियों ने लिखा और भोगा है। उसे आदिवासी समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों तथा उनकी जीवन शैली पर केन्द्रित होना होगा। अर्थात् आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के लिए आदिवासियों पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य कहलाता है।' वैसे जो आदिवासी समर्थक साहित्य के रचनाकार होते हैं, वे भी आदिवासियों की समस्याओं के हल हेतु कंधे से कंधा मिलाकर खड़े होते हैं।

आदिवासी लेखिका **वंदना टेटे** का कथन है कि 'गैर-आदिवासियों द्वारा आदिवासियों पर रिसर्च करके लिखी जा रही रचनाएँ शोध साहित्य है, आदिवासी साहित्य नहीं। आदिवासियत को नहीं समझने वाले हिन्दी-अंग्रेजी के लेखक आदिवासी साहित्य लिख ही नहीं सकते। आदिवासी जीवन का सच सुनी-सुनाई बातों से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।'

प्रो. वेंकटेश आजम के अनुसार- 'जो आदिवासी जीवन से प्रेरणा लेकर लिखा हुआ है, वह आदिवासी साहित्य है।'

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर आदिवासी एवं गैर-आदिवासी दृष्टि में निम्नलिखित तीन तरह के विचार हैं -

(1) 'आदिवासियत' अर्थात् आदिवासी दर्शन के तत्वों वाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। इस अवधारणा को आदिवासी साहित्य की परिभाषा के सर्वाधिक नजदीक माना जा सकता है।

(2) आदिवासी विषय पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है। यह अवधारणा गैर-आदिवासी लेखकों की है। संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ, माजी, रमणिका गुप्ता, बजरंग तिवारी आदि इसके समर्थक रहे हैं।

(3) आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है। इस अवधारणा से सम्बन्धित साहित्यकार/लेखक जन्मना एवं स्वानुभूति के आधार पर आदिवासियों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं तथा मतों के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जिसमें आदिवासी दर्शन होगा, वही सच्चे मायनों में आदिवासी साहित्य होगा। आदिवासी साहित्य जीवनवादी साहित्य है। आदिवासी साहित्य का उद्देश्य आदिम समूहों में भेदभाव रहित, वर्गरहित, जाति रहित समाज-व्यवस्था करना ही है। आदिवासी साहित्य की बुनियादी शर्त उसमें आदिवासी दर्शन के तत्वों का होना आवश्यक है।

प्रश्न-2. अनुवाद के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुये अनुवाद के प्रकार लिखिये।

अथवा

स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

उत्तर- अंग्रेजी में अनुवाद का रूपान्तरण 'ट्रांसलेशन' है। फ्रेंच में 'ट्रंडुक्शन', अरबी में 'तर्जुमा' और लैटिन भाषा में 'ट्रांस' (परिवहन) कहे जाने वाले अनुवाद का उद्देश्य नाम पृथक-पृथक होते हुये भी एक जैसे हैं। अनुवाद का उद्देश्य दूसरी भाषा के साहित्य को समृद्ध करना है, जिससे न केवल हम अपनी ही भाषा में उपलब्ध साहित्य को पढ़ सकते हैं, अपितु दूसरी भाषा के साहित्य से भी श्रेष्ठ विचारों का चयन किया जा सकता है।

दूसरा उद्देश्य भाषा की शैलियों, मुहावरे, लोकोक्तियों और दार्शनिक तथ्यों तथा तकनीकी शब्दावली व उससे सम्बन्धित ज्ञान को सरलता से समझा जा सकता है। अनुवाद का उद्देश्य अन्य भाषाओं में लिखित विचारों से हमें अवगत कराना है।

अन्य भाषा-भाषी राज्यों व देशों में जब भाषा के आदान-प्रदान की समस्या उपस्थित होती है, तब अनुवाद कार्य द्वारा उस समस्या का समाधान किया जा सकता है अर्थात् अनुवाद का उद्देश्य स्रोत भाषा में लक्ष्य भाषा के ज्ञान की प्राप्ति है, ताकि सम्पूर्ण विश्व को वैश्वीकरण की प्रक्रिया द्वारा एकीकृत किया जा सके।

यहाँ स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के अन्तर को भी स्पष्ट कर लेना चाहिये। वह भाषा, जिसमें कही गई बात को दूसरी भाषा में अनूदित किया जाता है, उसे स्रोत भाषा कहते हैं तथा वह भाषा जिसमें अनुवाद किया जाता है, उसे लक्ष्य भाषा कहते हैं। मूल स्रोत भाषा का रचनाकार अपने आप में जितना स्वतन्त्र होता है, लक्ष्य भाषा का अनुवादक उतना ही परतन्त्र होता है। उसे न तो मूल कथन की भाव-व्यंजना का अधिकार होता है और न व्याख्या का। वह एक ओर मूल लेखक के भाव-पक्ष से बँधा होता है तो दूसरी ओर लक्ष्य भाषा की अभिव्यक्ति सीमाओं के बंधन में भी रहता है, क्योंकि भाषाओं की भावाभिव्यक्ति न केवल अपने रचना शिल्प में ही भिन्न होती है, अपितु अभिव्यक्ति के उपागमों में भी भिन्न होती है। इसी कारण अनुवाद-प्रक्रिया का प्राविधिक रूप समान-सा लगते हुये भी एक जैसा नहीं होता। अनुवादक को स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के समानान्तरण स्वरूप के साथ-साथ उसके विभिन्नता स्वरूप का भी ध्यान रखना अनिवार्य होता है। प्रायः अनुवादक लक्ष्य भाषा की रचना शैली के साथ स्रोत भाषा की शैली नहीं मिला पाते। इस कार्य में सफल होने के लिये अनुवादक को मूल रचनाकार से अधिक परिश्रम करना अभीष्ट होता है। स्तरीय ग्रन्थों के अनुवादों में प्रायः यह कमी दिखाई देती है। इसी कारण प्रायः विज्ञ पाठक एक कृति के विभिन्न अनुवादकों द्वारा किये गये अनुवादों में से 'अच्छा अनुवाद' खोजते हुये देखे जाते हैं। ऐसे पाठकों में प्रायः वह पाठक आते हैं, जिन्हें स्रोत भाषा का भी कुछ ज्ञान होता है।

सामान्य रूप में अनुवादक यह पूरी तरह समझता है कि उसे अनुवाद सामग्री को स्रोत भाषा Source Language से लक्ष्य भाषा Target Language में सावधानीपूर्वक पुनर्प्रस्तुति करना है। वह यह भी जानता है कि एक भाषा से दूसरी भाषा में भाषान्तरण करना एक चुनौती भरा कार्य है।

जॉर्ज स्टीमर के शब्दों में 'अनुवाद करने का तात्पर्य है दो भाषाओं की बाह्य भिन्नताओं की तह में जाकर मानवीय अस्तित्व के साधन तत्वों को प्रकाश में लाना। मानव की खोई सार्वभौम सामान्य भाषा की मिथिकीय कल्पना यहाँ चरितार्थ होती है।'

जे.सी. केटफोर्ड लिखते हैं– 'अनुवाद स्रोत भाषा की पाठ सामग्री को लक्ष्य भाषा के समानार्थी पाठ मे प्रतिस्थापित करने की प्रक्रिया है।'

निष्कर्षतः **अनुवाद के प्रमुखतः तीन उद्देश्य है**–

(1) दूसरी भाषा के साहित्य से अपनी भाषा के साहित्य को समृद्ध करना।

(2) दूसरी भाषाओं की शैलियो, मुहावरों, दार्शनिक तथ्यों, वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान की प्राप्ति।

(3) विचार–विनिमय।

अनुवाद मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं–

(1) **शब्दानुवाद–** शब्दानुवाद में मूल भाषा का दूसरी भाषा में ज्यों का त्यों अनुवाद किया जाता है। मूल भाषा की शब्द–योजना और वाक्य विन्यास को यथावत् अनुवाद की भाषा में रखा जाता है। यह शब्दसः उनका अनुवाद होता है अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त शब्दक्रम के अनुसार ही अनुवाद में क्रम रखा जाता है। इससे कई बार वाक्य का सही अर्थ ध्वनित नहीं होता और कई बार तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

(2) **भावानुवाद–** शब्दानुवाद के स्थान पर भावानुवाद पाठक को अधिक समझ में आता है। इसमें शब्दों के क्रमानुसार अनुवाद का ध्यान न रखते हुये उस वाक्य या वाक्यों के भावगत पर नजर रखी जाती है और अनुवाद का लक्ष्य मूलभाव को उजागर करना होता है, लेकिन अनुवादक इस कार्य में अपने विचारों का समिश्रण नहीं कर सकता। केवल वह भावानुवाद करता है।

(3) **पर्याय या रूपान्तर अनुवाद–** इसमें अनुवादक की पूरी मनमानी रहती है। वह यथेष्ट परिवर्तन करता है। अपनी बातों–विचारों का समावेश करता है, लेकिन मूलपाठ के उद्देश्य अथवा विचार से भटकता नहीं है वरन् उसमें नई ऊर्जा और चेतना भर देता है।

प्रश्न–3. काव्य साहित्य अनुवाद के सिद्धान्त लिखिये।

उत्तर– स्वतंत्र पद्यानुवाद ही सर्वाधिक लोकप्रिय और आदर्श अनुवाद माना जाता है। इसमें अनुवाद कवि मूल भाषा का भाव ग्रहण करके उसे अपने अनुवाद समीक्षा का अनुसृजन पुकारते हैं। अनुसृजन के दौरान अनुवादक कभी अपनी ओर से कुछ संलग्न करता है, तो कभी मूल भाव की व्याख्या अपनी ओर से करता है या कुछ छोड़ता है। इसका समर्थन करते हुये फिट्जेराल्ड ने कहा है– 'ए लाइव स्पैरो इज बेटर दैन ए स्टफ्ड ईगल' (एक जिंदा गौरैया स्टफ किये गीध से श्रेष्ठ है)। स्वतन्त्र अनुवाद के कुछ उदाहरण – उमर खैयाम के रूबाइयात का फिट्जेराल्ड कृत अनुवाद, लाइट ऑफ एशिया का रामचन्द्रशुक्ल कृत अनुवाद, व्यास महाभारत का एषुत्तच्छन कृत मलयालम अनुवाद। अनुवाद की स्वतन्त्रता की सीमा कभी–कभी यहाँ तक बढ़ती है कि मूल रचना का पता ही नहीं लगता। हिन्दी में बिहारी लाल के अनेक दोहे इस प्रकार के हैं।

मूल कवि अपनी कविता के प्रति अतिशय अनुराग रखते हैं, उस पर गर्व करते हैं। दूसरे कवियों द्वारा अपनी रचनाओं के अनुवाद पर वे कभी अनुराग नहीं करते। ऐसे कवियों में जो मूलभाषा व लक्ष्य भाषा दोनों जानते हैं, वे अपनी कविताओं का अनुवाद स्वयं करते हैं। ऐसे अनुवाद में दूसरे अनुवादक के द्वारा अर्थ के अनर्थ होने की सम्भावना नहीं रहती। महाकवि

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी बंगला कविताओं का स्वयं अनुवाद करके गीतांजलि अंग्रेजी में प्रस्तुत की। उस पर उन्हें नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ। आजकल भारतीय भाषाओं के अनेक कवि अपनी रचनाओं का अनुवाद अंग्रेजी में करते हैं। अज्ञेय इसके उदाहरण हैं।

यद्यपि काव्यानुवाद में अनेक गलतियाँ सम्भव हैं और वह साहित्य जगत में अप्रतिष्ठित है तथापि काव्यानुवाद की परम्परा बहुत प्राचीन रही है। यदि काव्यों का अनुवाद न हुआ होता तो हम अनेक महान ग्रन्थों से वंचित होते। यूरोपीय काव्यों में होमर का ईलियड, दान्ते का डिवाइन कॉमेडी, चासर का कैन्टरबरी टेल्स, फिरदौसी का शाहनामा, मिल्टन का पैरेडाइज लौट्स आदि अनुवाद के माध्यम से विश्व की अन्य भाषाओं में उपलब्धि हुई है। भारतीय काव्यों में वेद, रामायण, महाभारत, शकुन्तला आदि काव्यों का अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं एवं विदेशी भाषाओं में किया गया। इसलिये कविता के अनुवाद की उपादेयता स्पष्ट है। सिर्फ यही शर्त है कि उचित रूप से अनुवाद किया जाये। उसके सिद्धान्त इस प्रकार है–

(1) कवि या लेखक के मूल भावों की रक्षा होनी चाहिये।

(2) शब्दों का प्रयोग भावों के अनुकूल होना चाहिये।

(3) अपनी ओर से दृष्टान्त जोड़े जाने चाहिये।

(4) व्याख्याता शैली का उपयोग निषेध है।

(5) यदि शब्द अनुवादन हो सके तो भावानुवाद का समावेश होना चाहिये।

प्रश्न–4. मध्य प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत का भारतीय–संस्कृति के सन्दर्भ में महत्व बताइये।

अथवा

मध्य प्रदेश के 'सांस्कृतिक–वैभव' पर एक सार–गर्भित निबन्ध लिखिये।

अथवा

मध्यप्रदेश के विशेष सन्दर्भ में लोक कलाओं का वर्णन कीजिये।

उत्तर– प्रस्तावना– भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में मध्यप्रदेश सांस्कृतिक विरासत की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न प्रदेश है। यहाँ भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयामों का प्राचीन काल से निरन्तर विकास क्रम बना रहा है। यहाँ साहित्यकारों, कलाकारों, शिल्पियों, वास्तुकलाविदों, चित्रकारों एवं संगीतज्ञों ने समय–समय पर अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर विकासक्रम को गति प्रदान की है। इनके प्रयासों के परिणामस्वरूप साहित्य, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत और नाट्य की अनेक विधाओं में कल्याणकारी सृजन हुये हैं। महाकवि कालिदास और भवभूति, विक्रमादित्य मुंज और भोज, तानसेन और बैजू बावरा, उदयन और वासवदत्ता, सिंगाजी और ईसुरी, पद्माकर, भूषण और केशव से लगाकर बाबा अलाउद्दीन खाँ, कुमारगंधर्व, कार्तिकराम फड़के, मुकुन्द भांड, माखनलाल चतुर्वेदी, शेख गुलाब जैसे अनेकानेक उच्च कोटि के कला–आराधकों ने अपनी कृतियों में विधि मौलिक तत्वों की सृष्टि की और उनमें सौन्दर्य और चारूता के भावों को समाहित किया। मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक विरासत का संक्षिप्त उल्लेख निम्नानानुसार दृष्टव्य है–

(1) **लोकगीत–** लोकगीतों की हमारी परम्परा अति प्राचीन है। इनमें क्षेत्रीयता का प्रभाव रहता है। यह सहज रूप में क्षेत्रीय भाषा में गाये जाते हैं। इनमें संगीत की अपनी धुन व लय होती है। गाने वाले एक विशिष्ट शैली में व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से गाते है। इन गीतों को गाते समय विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों से संगति की जाती है। इनमें कुछ स्थानीय प्रकृति के

वाद्य यंत्र होते हैं। ढोलक, मंजीरे, तम्बूरा, तुरही, घडा, लोटा, बाँस फाँस की खप्पचियां, अलगोजा आदि वाद्य यंत्रो का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक युग में तबला, हारमोनियम, बाँसुरी, वीणा, सितार और कई पश्चिमी वाद्य यंत्रों का भी नगरीय क्षेत्र में उपयोग किया जाता है। लोकगीत विवाह, फसल काटने, फसल बोने, होली, दीवाली, रक्षा बन्धन पर्व, तिथि त्यौहारो, पूजा अर्चना, शुभ अवसर, तीर्थ, भ्रमण आदि विभिन्न उपलक्षों मे गाये जाते हैं। स्त्रिया सामूहिक रूप से उन्हे गाती हैं। सार्वजनिक अवसरो पर पुरुष, स्त्रियाँ मिलकर भी गाते है। इन्हे हम अपनी सास्कृतिक धरोहर के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपते हैं। चाहे बुन्देलखण्डी लोकगीत हो या मालवी अथवा छत्तीसगढ़ी, सभी में आनन्द सृजन की भरपूर शक्ति निहित रहती है।

(2) लोक नृत्य-- लोक नृत्य में क्षेत्रीय आधार पर भिन्नता पाई जाती है। ये व्यक्तिगत और सामूहिक होते है। विशिष्ट अवसरों पर या सार्वजनिक कार्यों के समय सामूहिक लोकनृत्य कार्यक्रमो का आयोजन करने की परम्परा है। लोकनृत्य में स्वाभाविकता व सरलता होती है। इनमें लोकजीवन के जीवन्त एवं सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। लोकनृत्यों की विषय-वस्तु लोकगीतों की भाँति भिन्न-भिन्न होती है। भिन्न-भिन्न लोक नृत्य और इनकी शैलियों का भी उपयोग भिन्न-भिन्न अवसरों पर अलग-अलग किया जाता है। सामान्यतया लोक नृत्यों में श्रद्धा, प्रेम, भक्ति, साधना, आदर के भाव जीवित एवं सुरक्षित हैं।

मध्यप्रदेश के लोकनृत्यों में गौर भाडिया वनवासियों का, बस्तर की मुरिया जाति में कमसार, माहटी, गेडी, माओचोटा लोकनृत्य, रायगढ़ क्षेत्र का सरहुक लोकनृत्य, गौडों का करमा, सैला, मडौनी, बिरहा, कहरवा, सजनी, सुआ और दिवाली लोकनृत्य, बुन्देलखण्ड का राई-स्वांग-बेडनी नृत्य, मालवाना मटकी और अडंवा, भगोरिया, निबाड का गणगौर, काठी, कलगी तुर्रा, छत्तीसगढ़ का पंथी, व राऊत नाचा आदि प्रसिद्ध हैं। ग्वालियर-शिवपुरी में दुल-दुल घोडी लोकनृत्य प्रचलित हैं। मंडला में दशहरा, झटपट, रीना, परधौनी नृत्य प्रचलित है। भडम भरियाओं का और बुन्देलखण्ड के धोबी समाज का कानडा भी प्रसिद्ध है।

(3) लोक चित्रकला- लोक चित्रकला भी लोकगीत व लोक नृत्य की तरह स्थानीय प्रभाव लिये रहती है। इसमें स्थानीय लोक-जीवन की विभिन्न भावनाओं का चित्रण चित्रांकन के माध्यम से किया जाता है। स्त्री-पुरुष शादी-विवाह एवं शुभ अवसरों पर अपने घर के मुख्य द्वार एवं आंतरिक भाग को विभिन्न प्रकार के आकर्षक चित्र बनाकर सजाते हैं। उनमें रंग भरते हैं। ये चित्र देवी-देवताओं, स्त्री-पुरुषों, पशु-पक्षियों, वृक्ष, लताओं आदि से सम्बन्धित होते हैं। मांडने की प्रथा से चौक भरना, रंगोली बनाना, पृष्ठ चित्रांकन करना भी लोक कला के विभिन्न रूप हैं। मिट्टी के बर्तनों को रंगना उन पर विभिन्न चित्र आदि बनाने की भी परम्परा है। सूखे हुये पत्तों, सूखे हुये फलों, लौकी, कद्दू जैसी सब्जियों पर भी आकर्षक चित्र बनाये जाते हैं। मालवी क्षेत्र में लोक चित्रकला अत्यन्त आकर्षक एवं मन-मोहक है।

(4) हस्तकलायें- विभिन्न प्रकार की हस्त शिल्पकला के माध्यम से सुन्दर वस्तुयें बनाई जाती हैं जो उपयोगी एवं आकर्षक होती हैं। उदाहरण के लिये, पंखे और लकड़ी की वस्तुयें आदि। मध्यप्रदेश में हस्त शिल्पकला विकसित एवं सम्पन्न है।

(6) जनजातीय कला- मध्यप्रदेश में अनेक जनजातियाँ है। इनकी भी अपनी अपनी लोक कलायें हैं। ये लोग कलात्मक वस्तुयें व चित्र बनाते है। ये गायक लोकगीत और संगीत का कुशलता से प्रदर्शन करते हैं। लोकनृत्य और लोकगीत इनकी सामाजिक व्यवस्था के आधार हैं। लोकगीतों की इनकी अपनी अपनी स्थानीय भाषायें, लय और शैली होती है। इनके लोकगीत प्रायः सात श्रेणियों में विभक्त किये जाते हैं- (i) बच्चों के गीत, (ii) नृत्य गीत, (iii) विवाह गीत, (iv) कथा गीत, (v) शिकार गीत, (vi) यंत्र गीत, (vii) विविध आकांक्षाओं की पूर्ति के गीत। इनके नृत्य भी अनेक प्रकार के होते है, जैसे- पशु नृत्य, देव नृत्य, कुक्कट नृत्य, मयूर नृत्य, शूकर नृत्य, भाला लोक नृत्य, युद्ध नृत्य, कोकराना नृत्य आदि। ये लोग लोकगीत व लोकनृत्य के लिये कई प्रकार के वाद्य यंत्रों का भी प्रयोग करते है। इनमें प्रमुख है, मुरली, ढोलक, झाँझ, मजीरा, मृदंग, ढफला, डफली, करताल, घुंघरू, पत्थर वाद्य, बाँस वाद्य, लकड़ी वाद्य, बर्तन वाद्य आदि। जनजातियों के गीतों व नृत्यों में भावुकता, कल्पना और अभिव्यंजना की कोमल तथा उग्र दोनों शैलियाँ होती हैं। उग्र शैली आतंक व भय का वातावरण निर्मित करती है। जनजाति के लोग चित्रकला में प्रवीण होते है। ये मनुष्यों, पशु-पक्षियों वृक्षों आदि के चित्र बनाते हैं। ये अपने कच्चे मकानों, झोपड़ियों के दरवाजों के सामने देवता, राक्षस, पशु-पक्षी आदि की आकृतियों के चित्र बनाकर विचित्र प्रकार की चित्रकला का प्रदर्शन करते हैं। निःसन्देह ये कलाप्रेमी होते हैं तथा इनकी सौन्दर्यप्रियता इनके लोकजीवन के विभिन्न पहलुओं में सहज रूप मे देखने को मिलती है।

प्रश्न-5. मध्य-प्रदेश की लोक-गीत परम्पराओं का उल्लेख कीजिये।

उत्तर- लोक गीतों की हमारी परम्परा अति प्राचीन है। इनमें क्षेत्रीयता का प्रभाव रहता है। यह सहज रूप में क्षेत्रीय भाषा में गाये जाते हैं। इनमें संगीत की अपनी धुन व लय होती है। गाने वाले एक विशिष्ट शैली में व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से गाते हैं। इन गीतों को गाते समय विभिन्न प्रकार के वाद्य-यंत्रों से संगति की जाती है।

इनमें कुछ स्थानीय प्रकृति के वाद्य-यंत्र होते हैं। ढोलक, मंजीरे, तम्बूरा, तुरही, घड़ा, लोटा, बाँस-फाँस की खप्पचियाँ, अलगोजा आदि वाद्य-यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक युग में तबला, हारमोनियम, बाँसुरी, वीणा, सितार और कई पश्चिमी वाद्य-यंत्रों का भी नगरीय क्षेत्र में उपयोग किया जाता है। लोकगीत विवाह, फसल काटने, फसल बोने, होली, दीवाली, रक्षा-बन्धन पर्व, तिथि-त्यौहारों, पूजा-अर्चना, शुभ अवसर, तीर्थ, भ्रमण आदि विभिन्न अवसरों पर गाये जाते हैं। स्त्रियाँ सामूहिक रूप से उन्हे गाती हैं। सार्वजनिक अवसरों पर पुरुष, स्त्रियाँ मिलकर भी गाते हैं। लोकगीत का गायन स्वर, लय, ताल, हाव-भाव आदि के माध्यम से किया जाता है। श्रृंगार के भावों से युक्त लोकगीत, तागारियाँ, बन्ने, सोहर, विवाह तथा ऋतु विशेष के अवसर पर गाये जाते हैं। लोकगीतों की परम्परा बहुत लम्बी है। इन्हें हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपते हैं। चाहे बुन्देलखण्डी लोकगीत हो या मालवी अथवा छत्तीसगढ़ी, सभी में आनन्द सृजन की भरपूर शक्ति निहित रहती है।

प्रमुख लोकगीत शैली में पण्डवानी प्रमुख है। इसमें झाडूराम देवांगन और तीजनबाई वर्तमान के विख्यात कलाकार हैं। चंदेनी-राऊत जिसमें लोरिक चंदा की प्रेमगाथा गायी जाती

है छत्तीसगढ की प्रसिद्ध लोकगीत शैली है। तेजाजी की कथा, ढोला मारू की कथा और आल्हा भी लोकगीत शैली के प्रमुख उदाहरण है।

प्रश्न–6. लोक कथा किसे कहते हैं?

उत्तर– लोक कथा– जिस कहानी में लोक परम्परा का सहारा लेकर लोक मानस अपनी अभिव्यक्ति करता है, वह लोक कथा होती है। लोक कथा पुराण कथा से प्रभावित होती है। कुछ लोक कथायें देवी–देवताओं की पूजा और व्रत–उपवास के अवसरों पर स्त्रियों में कही–सुनी जाती है। भैया दूज, करवा चौथ, गणेश–पूजा आदि अवसरों पर ऐसी कथायें कही जाती हैं।

प्रश्न–7. लोक कहानियाँ किसे कहते हैं?

उत्तर– लोक कहानियाँ– परम्परा से चली आ रही मौखिक कहानियाँ लोक कहानियाँ होती हैं, जिनमें धर्म या पुराण कथा का तत्व आवश्यक नहीं होता। लोक विश्वासों और प्रथाओं से अवश्य इनका सम्बन्ध होता है। इनमें प्रभूत सांस्कृतिक सामग्री उपलब्ध होती है। इनके लिखित रूप भी होने लगे हैं।

प्रश्न–8. लोक गाथा किसे कहते हैं। इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– लोक गाथा– मौखिक परम्परा में पीढ़ी–दर–पीढ़ी गाया जाने वाला कथा–काव्य लोक गाथा कहलाता है। लोक गाथाओं में किसी लोक प्रसिद्ध वीर, भक्त, लोक नायक या देवी की कथा गीत विधा में कही जाती है। इनमें सरल छंदों का प्रयोग होता है और तुकों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। लोक संगीत का सरल आधार लेकर लोक गाथा का गायन होता है। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग–1 (पृष्ठ–286) में लोक गाथा की निम्नलिखित दस विशेषतायें मानी गई हैं–

(1) **लोक गाथा के रचयिता का अभाव–** लोक गाथा की रचना किस व्यक्ति विशेष ने की, यह कहना बड़ा कठिन है। देश और काल के अनुसार इनमें परिवर्तन और परिवर्द्धन होता रहता है।

(2) **प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव–** किसी लोक गाथा का कौन–सा मूल पाठ है, यह बतलाना संभव नहीं। उसके सभी पाठों का समान महत्व होता है।

(3) **आवृत्ति मूलक संगीत–** लोक गाथाओं का संगीत से अधिक साहचर्य होता है। बार–बार आवृत्ति वाले संगीत के बिना ये निष्प्राण होती हैं।

(4) **स्थानीयता का पुट–** गाथाओं में स्थानीय इतिहास, रीति–रिवाज तथा प्रथाओं का वर्णन उपलब्ध होता है।

(5) **मौलिक परम्परा–** लोक गाथा मौखिक रूप में चलती है, लिपिबद्ध नहीं होती। लिपिबद्ध होने पर लोक गाथाओं का विकास अवरूद्ध हो जाता है।

(6) **उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव–** इन गाथाओं में उपदेश देने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती।

(7) **स्वाभाविक प्रवाह–** कथा में प्रवाह का होना आवश्यक है। लोक गाथा का प्रवाह पहाड़ी नदी के समान होता है। 'आल्हा' में कितना प्रवाह है यह किसी से छिपा नहीं है।

(8) **अलंकृत शैली की अवियमानता–** लोक गाथा सहज, सरल तथा बोध गम्य शैली में होती है। यह अलंकारों के कारण कहीं बोझिल नहीं पाई जाती।

(9) **टेक पदों की पुनरावृत्ति–** टेक पदों की बार–बार आवृत्ति से गाथाओं में जीवन का संचार होता है.

(10) **लम्बा कथानक–** लोक गाथाओं का कथानक बड़ा लम्बा होता है। कथा ही इनकी प्रधानता है। आल्हा, लोरकी, विजयमल की लम्बी गाथायें इसका प्रमाण है।

प्रश्न–9. लोक गीत किसे कहते हैं? ये कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर– लोक गीत– लोक में गाए जाने वाले ऐसे गीत जिनके रचनाकारों का कोई पता नहीं होता और मौखिक परम्परा में चलते हैं, लोक गीत कहलाते है। ये विशेष अवसरों पर गाए जाने वाले विशिष्ट गीत होते हैं। लोक गीतों को इन शीर्षकों में (लोक गीत के प्रकार) बाँटा जा सकता है–

(1) **ऋतु गीत–** वर्षा, वसंत आदि ऋतुओं के समय ये गीत गाए जाते हैं। इनमें ऋतु संम्बन्धी प्रकृति का वर्णन और उस प्रकृति के परिवेश में मानव भावनाओं का चित्रण किया जाता है।

(2) **पर्व गीत–** होली, दिवाली, कार्तिक स्नान आदि के अवसरों पर ये गीत गाए जाते हैं। कार्तिक स्नान के गीत महिलायें ही गाती है, पुरुष नहीं।

(3) **श्रम गीत–** फसल बोने और काटने के समय गाए जाने वाले गीत, पशु चराने के समय के गीत, चक्की पीसने के समय गाए जाने वाले गीत आदि मानव के श्रम से जुड़े हुए गीत इस श्रेणी में आते हैं, जो मानव के श्रम का परिहार करने के साथ ही उसकी संस्कृति को भी रेखांकित करते हैं।

(4) **संस्कार गीत–** जन्म, विवाह, पुंसवन आदि संस्कारों और अनेक अनुष्ठानों के अवसरों पर ये गीत गाए जाते हैं।

(5) **धार्मिक गीत–** माता के भजन, देवी–देवताओं की स्तुतियाँ, आरतियाँ, तीर्थ–यात्रा के गीत, धार्मिक गीत होते हैं, जिनमें आराध्यों की स्तुतियाँ और कष्टों को दूर करने की प्रार्थनायें होती हैं।

(6) **बाल गीत–** बालिकाओं को सुलाने के लिए जो लोरियाँ गाई जाती हैं वे ऐसे बाल गीत हैं जिन्हें बच्चे सुनते भर हैं, गाते नहीं। बच्चे गाते हैं खेलते समय। लड़कों के खेल के गीत अलग होते हैं, लड़कियों के अलग। बुंदेलखंड में खेलते हुए बच्चे प्रायः इस त्रिपदी को गाते हैं–

बाबूलाल बाबूलाल तेल की मिठाई
दतिया की गैल में कुतिया नचाई
कुतिया मर गई लई लुगाई।

प्रश्न–10. लोक नाट्य किसे कहते हैं?

उत्तर– लोक नाट्य– धार्मिक उत्सवों, मांगलिक अवसरों, अनुष्ठानों आदि के समय लोक कलाकार जो अभिनय करते हैं, उसे लोक नाट्य कहते हैं। इनके रंगमंच स्थानीय साधनों के अनुसार ही बनाए जाते हैं। भिन्न भिन्न अंचलों में लोक नाट्य के अलग–अलग [illegible]

हैं। उत्तर प्रदेश मे रामलीला, स्वांग, नौटंकी, भाण, चमरवा, कहरवा, मध्यप्रदेश में माँच, गुजरात में भँवाई आदि लोक नाट्य खेले जाते हैं।

प्रश्न–11. लोक नृत्य किसे कहते हैं?

उत्तर– लोक नृत्य– विभिन्न अवसरों पर प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए लोग नाचने लगते है। देवी–देवताओं के दरबारों में, उत्सवों में, संस्कारों और अनुष्ठानों के समय नृत्य होते है। कुछ अवसरों पर केवल स्त्रियाँ नाचती है तो कुछ अवसर ऐसे होते है जिनमें केवल पुरुष नृत्य करते है।

प्रश्न–12. लोक कला क्या है?

उत्तर– लोक कला– लोक कला की प्रेरणा मनुष्य को अपने ही श्रम से प्राप्त हुई। उसके चित्रांकन में पशु से लड़ता हुआ मानव, लट्ठ उठाता हुआ आदमी और औजार बनाता हुआ आदमी देखा जा सकता है। हाथी, घोड़ा, गाय, बैल आदि पशुओं के चित्र, कमल का फूल गणेश, सूरज, चन्दमा, हनुमान, आदि के चित्र सपाट शैली में मिलते हैं। इनके रंग गहरे होते हैं और एक दो ही होते है, चित्रों में लोक चित्रकार आकृति का बोध कराते है, अगों की कुमाता, रंगों के प्रभाव आदि पर ध्यान देने की आवश्यकता का वे अनुभव नहीं करते।

प्रश्न–13. लोक संगीत से क्या आशय है?

उत्तर– लोक संगीत– गायन और वादन दोनों में लोक संगीतकार अपनी रूचि रखते हैं। गायन में स्वर को ऊँचाई पर ले जाने की प्रवृत्ति प्रधान रूप से देखी जाती है। वाद्य यंत्रों में चमड़े से मढ़े वाद्यों, साँस से फूंकने वाले वाद्यों और एक तार वाले वाद्यों का अधिक प्रयोग होता है। झाँझ और मंजीरे भी वाद्य यंत्रों में अपना स्थान रखते हैं। लोक वाद्यों में अब हारमोनियम ने भी प्रवेश पा लिया है।

प्रश्न–14. लोक कला से क्या आशय है?

अथवा

लोक संस्कृति से क्या आशय है?

अथवा

लोक कला के प्रति लोगों के लगाव को समझाइए।

उत्तर– कलाओं के आविष्कार के बाद लोगों ने उन्हें छोड़ा नहीं और न कलाओं ने लोगों को छोड़ा। कला के प्रति लोगों का लगाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। चित्र कला, संगीत आदि के समान ही पाक कला, मिट्टी के बर्तन बनाने की कला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला, सूत कातने और बुनने की कला, लकड़ी की वस्तुयें बनाने की कला, मूँज बनाने की कला, दरी बनाने, कपड़ा रंगने आदि अनेक प्रकार की कलायें लोक संस्कृति के कुछ प्रमुख तत्वों में मानी गई है। इनके अतिरिक्त अनेक बातें हैं जो संस्कृति से सम्बन्ध रखती हैं। संस्कृति के सारे तत्वों की चर्चा करना असंभव नहीं तो, कठिन अवश्य है। कोई निश्चित संख्या उनकी , तो विवेचन में सभी को समेटा जा सकता है, किन्तु संस्कृति जैसे जटिल विषय को पूरी ... विवेचित करना कितना कठिन है, यह सभी जानते हैं।

प्रश्न–15. लोक संगीत का सामान्य परिचय दीजिए।

अथ...

संगीत की उत्पा... म हुई ...चना की।

अथवा

लोक संगीत की उत्पत्ति पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

उत्तर– लोक संगीत प्रकृति की विभिन्न देनों में से एक देन है, जो मानव के लिए वरदान है। प्रकृति के समस्त घटकों जैसे सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, नदी, पहाड़, सागर, खेत–खलिहान, वर्षा, गर्मी, ठंड, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, प्राणी, हवा, प्रकाश इत्यादि के दर्शन लोक संगीत में सहज हैं। संसार के प्राणियों में मानव ही एक ऐसा है, जिसका मस्तिष्क प्रारम्भ से ही विकासशील रहा है। उसकी जिज्ञासा सदैव बलवती रही है। आदि मानव ने प्रकृति की गोद में रहते हुए उसके अनेक सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक रूपों का निकट से अवलोकन किया। धीरे–धीरे उसने उन रूपों के क्रिया–कलापों तथा गतिविधियों में से सुर, ताल एवं लय की अनुभूति की। आदिमानव को यह अनुभूति अत्यन्त सुखद प्रतीत हुई तथा इससे उसे आत्म मनोरंजन के साधन प्राप्त हुए।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के हिन्दी साहित्य कोष भाग–1 में उल्लेखानुसार– "लोक, मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है, जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।"

आदिमानव का जीवन अत्यन्त बेतरतीब था। वह सदैव असुरक्षित अवस्था में यत्र–यत्र पहाड़ों एवं गिरि कन्दराओं में विचरण करता था। फलस्वरूप कभी वह जानवरों का शिकार करता था और कभी–कभी वह स्वयं जानवरों का शिकार हो जाता था। अनुकूल स्थिति में हर्ष एवं आनन्द का वातावरण निर्मित होता था, किन्तु प्रतिकूल स्थिति में मानव शोक और विषाद में डूब जाता था। हर्ष एवं आनन्द के अवसर पर उसके हृदय में क्रोध, भय, उग्रता एवं तीव्रता की भावनाएँ उभरती थीं किन्तु कभी–कभी उसके आतुर मन में उल्लास, उमंग, कामना कौतूहल तथा रंजकता आदि की लालसा भी उत्पन्न होती थी। इन समस्त भावनाओं को वह अपनी आंगिक क्रियाओं द्वारा व्यक्त करना चाहता था। वह सामूहिक या वैयक्तिक हर्षोन्माद में चिल्लाने लगा, बुदबुदाने लगा, खुशी की अनुभूति में प्रफुल्लित होने लगा, उछलने लगा, कूदने लगा। पैरों में थिरकन उत्पन्न हुई और उसके हाथों से तालियों के स्वर फूटने लगे। इस प्रकार आदिमानव की इन सहज और प्राकृतिक क्रियाओं ने स्वर लहरियों, अंग संचालन एवं वादन के ताल को जन्म दिया। आदिमानव की प्राथमिक आवश्यकताएँ बड़ी सीमित थीं। प्राकृतिक आपदाओं से सतत संघर्ष करते हुए उसने मानवानुकूल अनेक परम्पराओं को जन्म दिया। इन्हीं परम्पराओं के अनुसार विभिन्न कार्यों को सम्पादित करते हुए वह नाचता रहा, गाता रहा और बजाता रहा। इस तरह आवश्यकतानुसार नृत्य, गीत और वाद्यों की उत्पत्ति हुई। आदिकाल से ही लोक संगीत निरन्तर रचा जाता रहा, जन–जन में प्रचलित होता रहा, लेकिन लोक संगीतकार सदैव अनाम रहा। इस प्रकार से लोक संगीत की उत्पत्ति हुई।

प्रश्न–16. शास्त्रीय संगीत का उद्भव कैसे हुआ? समझाइए।

उत्तर– वास्तव में लोक संगीत अज्ञात रचनाकारों की शास्त्रविहीन वह कृति है, जिसमें जनमानस के सहज एवं सरल मनोभावों की साधारण संगीतात्मक तथा मौखिक अभिव्यक्ति होती है। यह वह स्वाभाविक अभिव्यंजना है, जो किसी सिद्धान्तपरक शैली से भिन्न होकर लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत में अन्तर निर्मित करती है। यह मान्य होना चाहिए कि सृष्टि

में सर्वप्रथम संगीत की ही उत्पत्ति हुई है, किन्तु कालान्तर में कुछ स्वरों एवं तालों को लेकर जब जिज्ञासु संगीत मर्मज्ञों ने स्थिति व काल आदि के अनुसार विचार कर विशेष रचनाएँ तैयार की, तत्पश्चात् इस बात पर जोर दिया गया कि तैयार की गई रचनाएँ निर्धारित नियमों आदि के अनुसार ही अभिव्यक्त हों। तब आदिकाल से संगीत की अभिव्यक्ति में किसी प्रकार का बंधन स्वीकार न करने वाले लोक मानस ने इसे स्वीकार नहीं किया। वह अपनी स्वाभाविक, पारम्परिक एवं बंधनमुक्त धरोहर को ही विकसित करता रहा। फ्रायड के मतानुसार- ''संगीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान मनोवैज्ञानिक आधार पर हुई है। जिस प्रकार बालक रोना, चिल्लाना, हँसना आदि क्रियाएँ आवश्यकतानुसार स्वयं सीख लेता है, उसी प्रकार संगीत का प्रादुर्भाव मनोविज्ञान के आधार पर हुआ है। तद्नुसार सृष्टि का शनैः शनैः विकास एव परिमार्जन का एक प्रतिफल संगीत का वर्गीकरण प्रतीत होता है। कालान्तर में नियमबद्ध सगीत के ज्ञाता अपने संगीत को शास्त्रीय संगीत कहने लगे तथा जन-जन का बधन मुक्त संगीत, लोक संगीत कहा जाने लगा। संगीतज्ञ ओंकारनाथ ठाकुर का कहना है कि 'मेरा यह निरीक्षण है कि आरम्भ में मनुष्य भी एक प्राणी था, जैसे घन छाने पर मयूर अपने आप नृत्य करने लगता है, बसंत में कोयल गा उठती है, उसी प्रकार मनुष्य-प्राणी में भी संगीत का आरम्भ हुआ।' इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संगीत के प्रारम्भिक स्वरूप को ही शास्त्रोक्त रीति से नियमबद्ध कर शास्त्रीय रूप दिया गया। वस्तुतः लोक संगीत से ही शास्त्रीय संगीत का उद्भव हुआ।

प्रश्न- 17. 'शास्त्रीय संगीत का जन्मदाता, लोक संगीत ही है।' व्याख्या कीजिए।

उत्तर- पं. ओंकारनाथ ठाकुर, श्री कुमार गंधर्व तथा श्री रविशंकर जैसे महान् संगीतज्ञों ने अपने निःसंकोच उद्गार व्यक्त कर बुद्धिजीवियों एवं संगीत मर्मज्ञों को चौंका दिया कि ''शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति का स्रोत लोक संगीत ही है, ऐसा जान पड़ता है।'' वेदों की ऋचाओं में प्रयुक्त स्वरों के श्रवण से भी यह जान पड़ता है कि स्वरों का विकास लोक संगीत की स्वरलहरियों से ही संभव हुआ है। आज के शास्त्रीय संगीतज्ञ भी विभिन्न संगीत सम्मेलनों, परिसंवादों आदि में अपनी दबी जुबान से ही सही, पर इस तथ्य को स्वीकार करते पाए जाते हैं। इनके आलेखों, वक्तव्यों से यह प्रतिध्वनित होता है कि इनका अंतर्मन यह मानता है कि शास्त्रीय संगीत का जन्मदाता लोक संगीत है।'' किन्तु संभवतः वे इस सच्चाई को उद्घाटित करने में संकोच करते हैं। संगीतशास्त्री प्यारेलाल श्रीमाल के शब्दों में- ''प्रयोग में आते-आते जब कोई धुन इतनी रंजक, सुगेय तथा स्वाभाविक बन जाती है कि जन-मानस उसे सरलतापूर्वक अपने मानसिक आहार के रूप में अंगीकार कर लेता है, तब वह लोक संगीत का रूप धारण कर लेती है।' लोकसंगीत सहज, सरल एवं सर्वसाधारण के ग्रहण करने की शास्त्रविहीन वस्तु है जो मौखिक परम्परा के द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तगत होती रहती है। यह एक अलिखित अमर परम्परा है, जो कलापूर्ण एवं शास्त्रोक्त पद्धति से अप्रभावित है और युग-युगान्तर से अपने मौलिक रूपों में विद्यमान है।

प्रश्न- 18. लोक संगीत क्या है? इसका क्या महत्व है?

उत्तर- कुछ लोगों का सोचना है कि लोक संगीत अत्यन्त साधारण संगीत है, गाँव वालों का संगीत है, इसमें कठिन क्या है? बहुत आसान सीधी-सादी चीज है, इसे आसानी से सीखा जा सकता है। सत्य है कि लोक संगीत गाँव वालों का सादगीपूर्ण संगीत है, परन्तु जब हम लोक सगीत की गहराई और तकनीकी अध्ययन में जाते हैं, तब ज्ञात होता है कि यह एक अथाह सागर है, जिसमें हम जितनी बार डुबकी लगाएँगे, हमें उतनी बार नये-नये रत्न प्राप्त होंगे। जन-जन का संगीत होने के कारण इसमें असीमित विधाएँ, भाव-भंगिमाएँ एवं आकृतियाँ होती हैं, जिन्हें सीखने के लिए साधना की आवश्यकता पड़ती है। सन् 1955 में इंटरनेशनल फोक म्यूजिक कौंसिल ने लोक संगीत की परिभाषा तैयार की थी, जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है- ''लोक संगीत उस संगीत परम्परा की उद्भावना है जो मौखिक परम्परा के माध्यम से विकसित हुई। इस संज्ञा का प्रयोग उस संगीत के लिए किया जा सकता है, जिसका विकास कलात्मक शास्त्रीय संगीत के प्रभाव से पूरे समुदाय में स्वाभाविक रूप से होता है। साथ ही इसका सम्बन्ध उस संगीत से भी है जो किसी व्यक्ति विशेष द्वारा रचित होकर समाज में मौखिक परम्परा का अंग बन गया।'' लोक संगीत मन का उद्गार है। इसका सृजन बौद्धिक उठा-पटक नहीं है, बल्कि निश्छल मन की तरंगों से निकली हुई सरल एवं स्वच्छन्द धारा है। लोक संगीत रूपी निधि से मानव अतीत काल से उपकृत हुआ है, क्योंकि यह माटी की जड़ एवं मानव-रक्त की शिराओं से उपजकर मनुष्य की मूल प्रवृत्ति से जुड़ा है। मानव जीवन में इसका महत्व कभी भी कम नहीं हो सकता।

अति लघूत्तरीय प्रश्न

प्रश्न-1. काव्य के लक्षण कितने माने गये गये हैं? नामोल्लेख कीजिये।

उत्तर- काव्य के लक्षण- (1) स्थायित्व (2) व्यक्तित्व का प्रतिफलन (3) रागात्मकता।

प्रश्न-2. डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार काव्य की रचना किन कारणों से होती है? नामोल्लेख कीजिये।

उत्तर- डॉ. भागीरथ के अनुसार काव्य की रचना के निम्नलिखित तीन कारण होते हैं- (1) प्रेरक (2) निमित्त (3) उपादान।

प्रश्न-3. आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य के प्रयोजन लिखिये।

उत्तर- आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य निम्नलिखित प्रयोजनों से रचा जाता है- (1) यश प्राप्ति (2) अर्थ प्राप्ति (3) व्यवहार-ज्ञान (4) लोकहित (5) आत्मशान्ति (6) उपदेश देने के लिये।

प्रश्न-4. 'विभाव' कितने प्रकार का होता है?

उत्तर- विभाव के दो भेद हैं- (1) आलम्बन विभाव (2) उद्दीपन विभाव।

प्रश्न-5. स्थायीभाव और संचारीभावों की संख्या बताइये।

उत्तर- स्थायी भावों की संख्या नौ है जबकि संचारी भावों की संख्या 33 मानी गयी है।

प्रश्न-6. स्थायी भाव और संचारी भाव में मुख्य अन्तर क्या है? संक्षेप में लिखिये।

उत्तर– **स्थायी भाव और संचारी भाव में अन्तर–** स्थायी भाव मनुष्य के मन में स्थायी रूप से सोये रहते हैं और अनुकूल वातावरण पाकर जाग उठते हैं। प्रत्येक रस से सम्बन्धित एक स्थायी भाव होता है। जबकि संचारी भाव अधिक देर तक मन में नहीं रहते हैं और किसी एक रस से ही एक संचारी भाव नितान्त रूप से सम्बन्धित नहीं होता है।

प्रश्न–7. श्रृंगार वीर, अद्‌भुत, शान्त और वात्सल्य रस का स्थायी भाव लिखिये।

उत्तर–

	रस के नाम	–	स्थायी भाव
(1)	श्रृंगार	–	रति या प्रेम
(2)	वीर	–	उत्साह
(3)	अद्‌भुत	–	विस्मय या आश्चर्य
(4)	शान्त	–	वैराग्य
(5)	वात्सल्य	–	वत्सल।

प्रश्न–8. वियोग श्रृंगार–रस का एक उदाहरण लिखिये।

उत्तर– **वियोग श्रृंगार–रस** का उदाहरण –

'अखियाँ हरिदर्शन की भूखीं
कैसे रहें रूप रस राँची ये बतियाँ सुनिरूखीं ?
अवधि गनत, इकटक मग जोवत, तब एटी नहिं झूखीं।
अब इन जोंग संदेसनि ऊधो अति अकुलानी दूखी॥'

प्रश्न–9. छन्द में गण कितने माने गये हैं? नामोल्लेख भी कीजिये।

उत्तर– छन्द में 9 गण माने गये है, जिनके नाम निम्नानुसार हैं– (1) यगण (2) मगण (3) तगण (4) रगण (5) जगण (6) भगण (7) नगण (8) सगण।

प्रश्न–10. कौन–से ऐसे दो छन्द हैं, जो एक–दूसरे के उल्टे होते हैं? नाम लिखिये।

उत्तर– दोहा और सोरठा ऐसे दो छन्द हैं, जो मात्राओं की गणना के क्रम के आधार पर एक–दूसरे के उल्टे होते हैं।

प्रश्न–11. काव्य सिद्धान्तों की स्थापना क्यों की गई?

उत्तर– 'काव्य की आत्मा' विवादित प्रश्न पर काव्य सिद्धान्तों की स्थापना की गई।

प्रश्न–12. काव्य सिद्धान्तों में सबसे प्राचीन सिद्धान्त कौन–सा है?

उत्तर– काव्य सिद्धान्तों में सबसे प्राचीन 'रस सिद्धान्त' है।

प्रश्न–13. रस सिद्धान्त के आदि प्रणेता कौन हैं?

उत्तर– रस सिद्धान्त के आदि प्रणेता आचार्य भरतमुनि हैं।

प्रश्न–14. आचार्य भरतमुनि का बहुचर्चित शास्त्र कौन–सा है?

उत्तर– आचार्य भरतमुनि का बहुचर्चित शास्त्र नाट्य शास्त्र है।

प्रश्न–15. 'रस को काव्य की आत्मा' किस आचार्य ने कहा है?

उत्तर– आचार्य भरतमुनि ने रस को काव्य की आत्मा सर्वप्रथम घोषित किया।

प्रश्न– 6. रस दशा किसे कहते हैं?

उत्तर– 'आत्मा की मुक्तावस्था' को ही रस दशा कहते हैं।

प्रश्न–17. समन्वय वादी आचार्य कौन हैं?

उत्तर– समन्वय वादी आचार्य मम्मट हैं।

प्रश्न–18. 'रस रहस्य' के (रचयिता) कौन हैं?

उत्तर– रस रहस्य के रचयिता बिहारीलाल के भान्जे कुलपति मिश्र हैं।

प्रश्न–19. अलंकार सम्प्रदाय के समर्थक आचार्य कौन–कौन हैं?

उत्तर– अलंकार सम्प्रदाय के संस्थापक भामह हैं एवं इस सम्प्रदाय के समर्थक आचार्य निम्न हैं–

(1) उदभट भट्ट (2) दण्डी (3) रुद्रट (4) जयदेव (5) तथा प्रतिहारेन्दुराज।

प्रश्न–20. अलंकार सिद्धान्त की यह परिभाषा किसने दी है? 'न कान्त मपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्।'

उत्तर– अलंकार सिद्धान्त की यह परिभाषा आचार्य भामह ने दी है।

प्रश्न–21. मूलतः अलकार के कितने भेद माने जाते हैं?

उत्तर– मूलतः अलंकार के दो भेद हैं– (1) शब्दालंकार (2) अर्थालंकार।

प्रश्न–22. किन्हीं तीन मात्रिक–छन्दों के नाम लिखिये।

उत्तर– तीन मात्रिक छन्दों के नाम– (1) दोहा (2) सोरठा (3) चौपाई (4) रोला आदि।

प्रश्न–23. किन्हीं तीन वर्णिक–छन्दों के नाम लिखिये।

उत्तर– तीन वर्णिक छन्दों के नाम –

(1) वसन्त तिलका (2) मन्दाक्रान्ता (3) कवित्त।

प्रश्न–24. शब्दालंकार और अर्थालंकार में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– **शब्दालंकार और अर्थालंकार में अन्तर–** शब्दालंकार में रमणीयता शब्द–मात्रा पर आधारित होती है। अतः शब्दों में परिवर्तन करने पर वहां वह सौन्दर्य नहीं रहता है। अर्थालंकार में अर्थ चमत्कार के कारण रमणीयता उत्पन्न होती है। अतः उस पर शब्द–परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। शब्दालंकार में वाक्य के शब्दों को बदलकर पर्याय शब्द रख देने से अर्थ न बदलने भी अलंकारिता नष्ट हो जाती है।

प्रश्न–25. यमक और श्लेष अलंकार में अन्तर बताइये।

उत्तर– **यमक और श्लेष अलंकार में अन्तर–** यमक अलंकार में एक शब्द जितनी बार प्रयोग किया जाता है, उसके उतने ही अर्थ होते हैं, जबकि श्लेष अलंकार में एक शब्द का एक ही बार प्रयोग किया जाता है और उसके अनेक अर्थ निकलते हैं। यही दोनों में अन्तर है।

प्रश्न–26. आदिकाल की रचनायें कितने और कौन–कौन से वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं?

उत्तर– आदिकाल की रचनाओं को 6 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं– (1) सिद्ध साहित्य (2) जैन साहित्य (3) नाथ साहित्य (4) रासो साहित्य (5) लौकिक साहित्य (6) गद्य रचनायें।

प्रश्न–27. निम्नलिखित में से किन्हीं तीन पर टिप्पणियाँ लिखिये–

(अ) रस के प्रकार (ब) दोहा

(स) अलंकार और उसके प्रमुख भेद (द) अनुप्रास अलंकार।

उत्तर– **(अ) रस के प्रकार–**

1. श्रृंगार	2. हास्य	3. करुण	4. रौद्र
5. वीर	6. भयानक	7. वीभत्स	8. अद्‌भुत
9. शान्त	10. वात्सल्य		

(ब) दोहा– लक्षण– इसके प्रथम और तृतीय चरण में 13 तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में 11 मात्रायें होती हैं। अन्त में लघु वर्ण होना आवश्यक है।

उदाहरण– *'एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।*
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।'

SIS। IIS। II SII II SS। = 13 + 11 = 24 मात्रायें।

13+11=24 मात्रायें।

(स) अलंकार और उसके प्रमुख भेद– 'अलंकार' शब्द का शाब्दिक अर्थ है– 'आभूषण'। जिस प्रकार आभूषण मनुष्य के शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं, उसी प्रकार साहित्य के अलंकार साहित्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। इसीलिये कहा जाता है कि ''अलंकरोति इति अलंकारः'' अर्थात् जो सुशोभित करे या सुन्दरता बढ़ाये, वह अलंकार कहलाता है। जिस प्रकार कंकण, केयूर आदि आभूषण शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, ठीक उसी प्रकार काव्य की भाषा एवं भाव को सुन्दर बनाने के लिये अलंकारों का प्रयोग किया जाता है।

परिभाषा– 'काव्य शोभा करान् धर्मान् अलंकार प्रचक्षते' अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों (विशेषताओं) को अलंकार कहा जाता है। अलंकारों के तीन भेद माने गये हैं।

1. **शब्दालंकार–** जहाँ शब्दों के विशिष्ट या चमत्कारिक प्रयोग द्वारा काव्य की शोभा में वृद्धि की जाये। जैसे– अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि।

2. **अर्थालंकार–** जहाँ अर्थ को सुन्दर और चमत्कारपूर्ण बनाने की चेष्टा की जाये वहां अर्थालंकार होते हैं। जैसे– उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि।

3. **उभयालंकार–** जहाँ शब्दों और अर्थ दोनों का ही चमत्कारपूर्ण मिश्रण हो, वहाँ उभयालकार माने जाते हैं।

(द) अनुप्रास अलंकार– जहाँ किसी काव्य–पंक्ति में एक या एक से अधिक वर्णों की सक्रम अर्थात् एक जैसे क्रम से अर्थात् पहला, दूसरा, तीसरा वर्ण आदि आवृत्ति हो वहां अनुप्रास अलंकार होता है। उदाहरण–

'तरनि तनुजा तट तमाल तरुवर बहुछाये।'

प्रश्न–28. आल्हखण्ड के रचयिता कौन हैं?

उत्तर– जनकवि जगनिक।

प्रश्न–29. गुणाढ्य की पैचाशी प्राकृत रचना का नाम लिखिये।

उत्तर– वड्ड कथा (ब्रहत्कथा)।

प्रश्न–30. भक्तिकाल में बुन्देलखण्ड के श्रेष्ट कवि के नाम लिखिये।

उत्तर– तुलसीदास।

प्रश्न–31. ईसुरी किसे सम्बोधित करके फागें लिखते रहे?

उत्तर– ईसुर को।

प्रश्न–32. संतोष सिंह बुन्देला का जन्म–स्थान बताइये।

उत्तर– छतरपुर जिले के पहाड़गाँव में।

प्रश्न–33. बनाफरी किसकी उपबोली है?

उत्तर– पूर्वी क्षेत्र की।

प्रश्न–34. जगनिक का समय विद्वानों ने कबसे कब तक माना है?

उत्तर– 1165 से 1203 ई.।

प्रश्न–35. लोककवि 'ईसुरी' के मामा कौन थे?

उत्तर– पण्डित भूधर नायक।

प्रश्न–36. 'पटियाँ गोला मुखपै पारें, सेंदुर माँग सँवारे' यह किस कवि की पंक्ति है?

उत्तर– कवि ईसुरी की।

प्रश्न–37. सन्तोषसिंह 'बुन्देला' की दोस्ती किस फिल्मी हास्य अभिनेता से थी?

उत्तर– मेहमूद से।

प्रश्न–38. 'मिथ्या नहीं कविन की बानी, जिह्वा रहत भवानी' उक्त पंक्ति किस कवि की है?

उत्तर– कवि ईसुरी की।

प्रश्न–39. वर्तमान उ.प्र. के कुल कितने जिले बुन्देलखण्ड में आते हैं?

उत्तर– 5

प्रश्न–40. 'बुन्देल' अथवा 'बुंदेला' शब्द वर्ग विशेष के क्षत्रियों का अथवा बुन्देलों की निवास भूमि होने का द्योतक है।

उत्तर– यह बुन्देलों की निवास भूमि होने का द्योतक है।

प्रश्न–41. 'बुंदेली' ..... हिन्दी की महत्वपूर्ण बोली है।

उत्तर– पश्चिमी।

प्रश्न–42. इंडिया गजेटियर के अनुसार बुंदेलखण्ड की सीमा उत्तर में कौन–सी नदी है?

उत्तर– यमुना नदी।

प्रश्न–43. डॉ. बलभद्र तिवारी के अनुसार बुंदेली काव्य के इतिहास का सांस्कृतिक उन्मेष काल का समय बताइये।

उत्तर– 7वीं विक्रम से 18वीं विक्रमी तक।

प्रश्न–44. 'अंखियाँ जब काऊ से लगतीं सब–सब रातन जगतीं' किस कवि की कविता की पंक्ति हैं?

उत्तर– ये कवि ईसुरी की पंक्तियाँ है।

प्रश्न–15. किस कवि की प्रेरणा से संतोष सिंह बुंदेला ने बुंदेली को अपनी रचना का माध्यम बनाया?

उत्तर– भवानी प्रसाद मिश्र की प्रेरणा से।

प्रश्न–16. 'स्यालीराम' किस लोक कवि के समकालीन थे?

उत्तर– ईसुरी के।

प्रश्न–17. जगनिक कवि का समय विद्वानों ने कौन–सा माना है?

उत्तर– विद्वानों ने जगनिक का समय 1165 से 1203 ई. माना है।

प्रश्न–18. जगनिक की प्रसिद्ध रचना का नाम क्या है?

उत्तर– जगनिक की प्रसिद्ध रचना का नाम आल्हखण्ड है।

प्रश्न–19. आल्हखण्ड की विषयवस्तु क्या है?

उत्तर– आल्हखण्ड में आल्हा, ऊदल और पृथ्वीराज के युद्धों का वर्णन है।

प्रश्न–50. ईसुरी का जन्म कब हुआ?

उत्तर– ईसुरी का जन्म संवत् 1898 में हुआ था।

प्रश्न–51. ईसुरी का पालन–पोषण किसने किया?

उत्तर– ईसुरी का पालन–पोषण उनके मामा पं. भूधर नायक ने किया।

प्रश्न–52. ईसुरी की प्रेरणा कौन थी?

उत्तर– ईसुरी की प्रेरणा 'रजऊ' नामक सुन्दरी थी।

प्रश्न–53. ईसुरी किस साहित्य के लिये विख्यात हैं?

उत्तर– ईसुरी बुन्देली की फाग रचनाओं के लिये प्रसिद्ध है।

प्रश्न–54. ईसुरी को साहित्य जगत में स्थापित करने में किसका हाथ था?

उत्तर– हिन्दी जगत में ईसुरी को सर्वप्रथम मुंशी अजमेरी ने स्थापित किया।

प्रश्न–55. कवि ईसुरी की पत्नी का क्या नाम था?

उत्तर– ईसुरी की पत्नी का नाम श्यामा था।

प्रश्न–56. ईसुरी का उनकी प्रेरणा रजऊ से कहाँ परिचय हुआ?

उत्तर– ईसुरी का उनकी प्रेरणा रजऊ से 'धोर्रा' ग्राम में प्रथम परिचय हुआ था। ईसुरी वहाँ कारिंदा के पद पर थे।

प्रश्न–57. ईसुरी की मृत्यु कहाँ हुयी?

उत्तर– ईसुरी की मृत्यु उनकी पुत्री के घर ग्राम धवार में हुयी।

प्रश्न–58. संतोष सिंह बुन्देला का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

उत्तर– संतोष सिंह बुन्देला का जन्म छतरपुर जिले की पहाड़गाँव जागीर में सन् 1934 को हुआ।

प्रश्न–59. इनके पिता का क्या नाम था?

उत्तर– संतोष सिंह बुन्देला के पिता का नाम दीवान दिल्लीपत सिंह जूदेव था।

प्रश्न–60. संतोष सिंह बुन्देला ने साहित्य सृजन कब से प्रारम्भ किया?

उत्तर– संतोष सिंह बुन्देला ने साहित्य सृजन 1950 से प्रारम्भ किया।

प्रश्न–61. संतोष सिंह बुन्देला ने किस विधा में लिखा है?

उत्तर– संतोष सिंह बुन्देली में गीत लिखा करते थे।

प्रश्न–62. बुन्देला की कुछ कविताओं के नाम बताइये।

उत्तर– बुन्देलाजी की प्रमुख कविताओं के नाम– 'गाँव की संध्या', 'हमार रमदेरा की तान', 'जे फागुन के मेह' और 'आज मेरे करम गजब हुइगा रे' है।

प्रश्न–63. संतोष सिंह बुन्देला साहित्य जगत में किस रूप में प्रतिष्ठित हुये?

उत्तर– संतोष सिंह बुन्देला साहित्य क्षेत्र में बुन्देली गीतकार के रूप में प्रतिष्ठित हुये।

प्रश्न–64. बुन्देलाजी ने कवि सम्मेलनों में कब से भाग लिया?

उत्तर– बुन्देलाजी ने सन् 1967 से कवि सम्मेलनों में जाना प्रारम्भ किया।

प्रश्न–65. माधव शुक्ल 'मनोज' का जन्म कब हुआ?

उत्तर– माधव शुक्ल 'मनोज' का जन्म 1931 में हुआ।

प्रश्न–66. माधव शुक्ल 'मनोज' की जीविका का क्या साधन है?

उत्तर– वे अध्यापक के पद पर कार्यरत हैं अतः उनकी जीविका का साधन 'अध्यापन' है।

प्रश्न–67. माधव शुक्ल 'मनोज' ने किस परिवेश पर कवितायें लिखी हैं?

उत्तर– माधव शुक्ल 'मनोज' ने ग्रामीण परिवेश पर कवितायें लिखी है।

प्रश्न–68. माधव शुक्ल 'मनोज' ने किस छन्द योजना एवं काव्य धारा का स्थापन किया है?

उत्तर– माधव शुक्ल 'मनोज' ने नयी छन्द एवं नवीन काव्य–धारा का स्थापन किया है।

प्रश्न–69. कवि ने अपनी कविता में किससे विनती की है?

उत्तर– कवि ने अपनी कविता में विन्ध्यवासिनी देवी माँ से विनती की है।

प्रश्न–70. माधव शुक्ल 'मनोज' के अनुसार षड्–ऋतुयें किसकी परिक्रमा करती हैं?

उत्तर– कवि के अनुसार षड्–ऋतुयें बुन्देलखण्ड क्षेत्र की परिक्रमा करती है।

प्रश्न–71. प्रातःकाल दूध देने कौन जाता है?

उत्तर– दन्नो ग्वाला।

प्रश्न–72. बेर बीनने कौन गया?

उत्तर– बेर बीनने पनुआँ गया।

प्रश्न–73. राम नाम लेती हुयी कौनसी चिड़िया दिखलायी दी है?

उत्तर– राम नाम लेती हुयी सगुन चिरैया दिखलायी दी।

प्रश्न–74. राम ने कहां रहकर अपनी विपत्ति काटी थी?

उत्तर– राम ने चित्रकूट में रहकर विपत्ती काटी थी।

प्रश्न–75. संसार में सीधे मनुष्य से क्या व्यवहार किया जाता है?

उत्तर– संसार में सीधे मनुष्य पर डॉट पड़ती है। उसे पूछने वाला कोई नहीं है।

प्रश्न–76. घी कैसे निकलता है?

उत्तर– टेढ़ी उंगलियों से घी निकता है, सीधे हाथ से नहीं निकलता।

प्रश्न–77. संतोष सिंह बुन्देला की पत्नी का नाम क्या है?

उत्तर– उनकी पत्नी का नाम श्रीमती प्रेमकुँअर है।

प्रश्न–78. संतोष सिंह बुन्देला के पुत्रों के क्या नाम हैं?

उत्तर– उनके पुत्रों के नाम– (1) मंगल सिंह, (2) सूर्य प्रताप सिंह, (3) सावन्त सिंह हैं।

प्रश्न–79. संतोष सिंह बुन्देला की पुत्रियों के नाम बताइये।

उत्तर– उनकी पुत्रियों के नाम– (1) श्रीमती शशी सिंह और (2) कुमारी निशा सिंह हैं।

प्रश्न–80. फिल्म नगरी में बुन्देला के मित्र कौन थे?

उत्तर– हास्य अभिनेता मेहमूद और फिल्म निर्माता रवि बुन्देला जी के मित्र थे।

प्रश्न–81. बुन्देला जी कविता में किसे महत्व देते थे?

उत्तर– बुन्देलाजी अपनी कविता में भावों को महत्व देते थे, किसी शास्त्र को नहीं।

प्रश्न–82. गाँव तथा शहर के जीवन में विषमता क्यों है?

उत्तर– केवल गाँव वाले उत्पादन करते हैं और शहर वाले उसका उपभोग करते हैं। इसलिये आर्थिक सन्तुलन बिगड़ जाता है।

प्रश्न–83. भारतीय संस्कृति और धर्म के प्रति बुन्देला जी का क्या विचार था?

उत्तर– वे कहते थे– ''सच पूछा जाये तो अतीत के बिना वर्तमान और भविष्य वैसा ही है जैसे बिना बल्दियत के इन्सान।''

प्रश्न–84. औरंगजेब ने किस बुन्देली राजा को दबाने के प्रयासों में कामयावी नहीं पाई? उस राजा का नाम लिखिये।

उत्तर– महाराजा छत्रसाल को।

प्रश्न–85. 'आज मोरे करम गजब हुइगा रे' शीर्षक बुंदेली कविता के रचयिता का नाम लिखिये।

उत्तर– श्री संतोष सिंह 'बुन्देला'।

प्रश्न–86. 'जागै धरती माँ के फिर सै सौये सनेह' यह अंश किस कविता का है?

उत्तर– यह संतोष सिंह 'बुन्देला' द्वारा रचित 'आज सबसे दूर है, मजबूर से रहै' कविता का अंश है।

प्रश्न–87. छतरपुर जिले के पहाड़गाँव में आपके पठित कवियों में से किस कवि का जन्म हुआ था? उसका नाम लिखिये।

उत्तर– संतोष सिंह 'बुन्देला'।

प्रश्न–88. ईसुरी के जीवन का अधिकांश समय किस स्थान पर बीता था? उस गाँव का नाम बताइये।

उत्तर– बगौरा ग्राम में।

प्रश्न–89. छतरपुर नरेश ने किस बुंदेली कवि को 'राजकवि' का पद देना चाहा था, जिसे उस कवि ने अस्वीकार कर दिया था?

उत्तर– ईसुरी को।

प्रश्न–90. माधव शुक्ल मनोज का जन्म कहाँ और कब हुआ?

उत्तर– माधव शुक्ल 'मनोज' का जन्म मध्यप्रदेश के सागर अंचल में 1 अक्टूबर, सन् 1931 को हुआ।

प्रश्न–91. माधव शुक्ल 'मनोज' के अप्रकाशित कविता–संग्रह का नाम बताइये।

उत्तर– उनका अप्रकाशित कविता संग्रह 'अनकटी यात्रायें' है।

प्रश्न–92. कवि माधव शुक्ल 'मनोज' की छवि श्रेष्ट गायक के रूप में किस प्रकार बनी?

उत्तर– इनके सभी छन्द गाये जाने वाले हैं तथा इनकी आवाज बड़ी मधुर है। इसी कारण ये मधुर कण्ठ के गायक के रूप में प्रसिद्ध हुये।

प्रश्न–93. हम खुटियों पें लटके रे गये–
फटे पुराने उन्ना से।
उपरोक्त पंक्तियों का आशय संक्षेप में बताइये।

उत्तर– कवि ने प्रस्तुत पंक्तियों में स्वयं के जीवन में अनुभव किये अभाव की ओर संकेत किया है।

प्रश्न–94. 'विजय तुमारी महुबे होवै' यह उक्ति 'आल्हा' काव्य में किस पात्र के मुख से निकलती है?

उत्तर– जयचन्द के मुख से।

प्रश्न–95. 'हम तन से औ तुम मन से काले' का कथन करने वाले बुंदेली कवि का नाम लिखिये।

उत्तर– संतोष सिंह 'बुन्देला'।

प्रश्न–96. संतोष सिंह बुंदेला ने किसकी प्रेरणा से बुंदेली को अपनी रचना का माध्यम बनाया?

उत्तर– इन्हें काव्य प्रेरणा इनके पिता स्व. जगन्नाथ प्रसाद हयारण एवं स्व. नाथूराम माहौर तथा स्व. घासीराम व्यास से मिली।

प्रश्न–97. बुन्देला शब्द किसका द्योतक है?

उत्तर– बुन्देलखण्ड के राजपूतों का।

प्रश्न–98. 'हमारे रमटेरा की तान' किसकी रचना है?

उत्तर– संतोष सिंह बुन्देला की।

प्रश्न–99. 'हो गई जा धूरा गुलाल पिया' किसकी रचना है?

उत्तर– माधव शुक्ल मनोज की।

प्रश्न–100. 'हंस रई चिंरौंजी सी दाँतों की पातें' किस कवि की पंक्ति है?

उत्तर– माधव शुक्ल 'मनोज' की।

प्रश्न–101. 'मौसम बजाऊ न लगो झुनझुना' किस कविता की पंक्ति है?

उत्तर– प्रस्तुत पंक्ति 'नीके बसंती आ गये दिना' कविता की है।

प्रश्न–102. बुंदेला किस कवि का उपनाम है?

उत्तर– 'बुन्देला' संतोष सिंह 'बुन्देला' का उपनाम है।

प्रश्न–103. रजऊ किसकी 'नायिका' का नाम है?

उत्तर– 'रजऊ' ईसुरी की नायिका थी।

प्रश्न–104. कवि भूषण किस राजा के यहाँ मेहमान थे जो बुंदेलखंडी था?

उत्तर– विभूषण बुन्देलखण्डी राजा छत्रसाल के यहाँ मेहमान थे।

प्रश्न–105. दर्शार्णदेश किस 'खण्ड' को कहा जाता है?

उत्तर– दर्शार्णदेश बुन्देलखण्ड को कहा जाता है।

प्रश्न–106. जगनिक द्वारा रचित 'आल्हखण्ड' में महोबे के किन दो वीरों का वर्णन है? नाम लिखिये।

उत्तर– जगनिक द्वारा रचित आल्हखण्ड में महोबे के आल्हा और ऊदल नामक दो वीरों का वर्णन किया है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तर

(1) हिन्दी का मूलाधार है–
(अ) संस्कृत (ब) अंग्रेजी
(स) मराठी (द) तमिल।
उत्तर– (अ) संस्कृत।

(2) मध्यप्रदेश की सभी बोलियों का सामूहिक नाम है–
(अ) खड़ी बोली (ब) हिन्दी
(स) बुन्देली (द) कन्नौजी।
उत्तर– (ब) हिन्दी ।

(3) आकार बहुला भाषायें किसके अन्तर्गत आती हैं?
(अ) पूर्वी हिन्दी (ब) पश्चिमी हिन्दी
(स) संस्कृत (द) पंजाबी।
उत्तर– (ब) पश्चिमी हिन्दी।

(4) ब्रजभाषा का स्वरूप है–
(अ) पूर्वी हिन्दी (ब) आकार बहुला
(स) मधुर और कर्णप्रिय (द) कठोर और लड़ाकू।
उत्तर– (स) मधुर और कर्णप्रिय।

(5) अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी आती है–
(अ) पूर्वी हिन्दी में (ब) पश्चिमी हिन्दी में
(स) विहारी हिन्दी में (द) पहाड़ी हिन्दी में।
उत्तर– (अ) पूर्वी हिन्दी में।

(6) पूर्वी हिन्दी के कितने रूप मिलते हैं?
(अ) दो (ब) तीन
(स) पाँच (द) चार।
उत्तर– (ब) तीन।

(7) रीवा, सीधी, सतना, शहडोल में बोली जाती है–
(अ) बघेली (ब) बुंदेली

(स) अवधी (द) छत्तीसगढ़ी।
उत्तर– (अ) बघेली।

(8) आज जिसे हिन्दी भाषा कहा जाता है, उसका प्रारम्भिक रूप है–
(अ) मगधी (ब) मैथिली
(स) खड़ी बोली (द) अवधि।
उत्तर– (स) खड़ी बोली।

(9) भावाभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है–
(अ) भाषा (ब) क्रीड़ा
(स) नृत्य (द) संगीत।
उत्तर– (अ) भाषा।

(10) समर्थ रचनात्मक भाषा है–
(अ) मालवी हिन्दी (ब) हाड़ौती
(स) खड़ी बोली हिन्दी (द) बुंदेली
उत्तर– (स) खड़ी बोली हिन्दी।

(11) सम्पूर्ण राष्ट्र के लोगों के विचार विनिमय का माध्यम बनती है–
(अ) राष्ट्रभाषा (ब) साहित्य भाषा
(स) मध्यस्थ भाषा (द) अनुवाद।
उत्तर– (अ) राष्ट्रभाषा।

(12) हिन्दी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में कब स्वीकार किया गया–
(अ) 19 सितम्बर, 1449 में (ब) 14 सितम्बर, 1449 में
(स) 14 सितम्बर, 1949 में (द) 19 सितम्बर, 1994 में।
उत्तर– (स) 14 सितम्बर, 1949 में।

(13) केन्द्र तथा राज्य सरकारें आपसी पत्र–व्यवहार किस भाषा में करती है?
(अ) राष्ट्रभाषा (ब) संपर्कभाषा
(स) हिन्दी राजभाषा (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) हिन्दी राजभाषा।

(14) जो भाषा अन्य भाषा भाषियों से संपर्क स्थापित करने के लिये व्यवहार में प्रयुक्त होती है, उसे कहते हैं?
(अ) मातृभाषा (ब) दोनों
(स) संपर्कभाषा (द) क्षेत्रीय भाषा।
उत्तर– (स) संपर्कभाषा।

(15) गोपनीय कार्यों के लिये किस भाषा का प्रयोग करते हैं?
(अ) कठोर भाषा (ब) विनम्र भाषा
(स) संकेत भाषा (द) कूट भाषा।
उत्तर– (द) कूट भाषा।

(16) तत्सम शब्द होते हैं–
(अ) स्रोत भाषा (ब) पर्यायवाची
(स) समानार्थी (द) देशज।
उत्तर– (अ) स्रोत भाषा।

(17) भाषा में महत्व होता है–
(अ) समर्थ शब्दों का (ब) वर्णों का
(स) मात्राओं का (द) अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग का।
उत्तर– (अ) समर्थ शब्दों का।

(18) तद्भव शब्द होते हैं–
(अ) स्रोत भाषा से उत्पन्न (ब) लक्ष्य भाषा से उत्पन्न
(स) अलंकार युक्त रचना (द) दो भाषाओं से मिले–जुले शब्द।
उत्तर– (अ) स्रोत भाषा से उत्पन्न।

(19) विभिन्न भाषाओं के शब्द प्रयोग से हिन्दी–
(अ) पिछड़ गयी (ब) समृद्ध हुयी
(स) गुलाम हो गयी (द) विकास रुक गया।
उत्तर– (ब) समृद्ध हुयी।

(20) देशज का अर्थ है–
(अ) देश से गयी हुई (ब) देश में आई हुई
(स) देश में उत्पन्न (द) देश का निवासी।
उत्तर– (स) देश में उत्पन्न।

(21) आगत का अर्थ है–
(अ) आया हुआ (ब) गुमा हुआ
(स) गया हुआ (द) आने वाला।
उत्तर– (अ) आया हुआ।

(22) कामता प्रसाद गुरू की प्रसिद्धि का आधार है–
(अ) हिन्दी व्याकरण ग्रन्थ (ब) समाज सेवा
(स) देश–प्रेम (द) ब्रजभाषा सेवा।
उत्तर– (अ) हिन्दी व्याकरण ग्रन्थ।

(23) कामता प्रसाद गुरू ने सम्पादन किया–
(अ) सरस्वती और साहित्य का (ब) बालसखा और सरस्वती का
(स) बालभारती का (द) सरस्वती और बालभारती का।
उत्तर– (ब) बालसखा और सरस्वती का।

(24) किशोरी दास वाजपेयी का प्रमुख स्थान है–
(अ) व्याकरण चर्चा में (ब) नाटककारों में
(स) कहानीकारों में (द) इतिहासकारों में।
उत्तर– (अ) व्याकरण चर्चा में।

(25) हिन्दी शब्दानुशासन के रचनाकार हैं–
(अ) कामता प्रसाद गुरू (ब) किशोरी दास वाजपेयी
(स) पं. रामचन्द्र शुक्ल (द) किशोरीदास गोस्वामी।
उत्तर– (ब) किशोरी दास वाजपेयी।

(26) संस्कृत के पाँच अध्याय के रचनाकार हैं–
(अ) रामधारी सिंह दिनकर (ब) किशोरीदास वाजपेयी
(स) कामता प्रसाद गुरू (द) के. डी. वाजपेयी।

उत्तर– (ब) किशोरीदास वाजपेयी।

(27) हिन्दी की लिपि है–
(अ) खड़ी बोली (ब) अंग्रेजी
(स) देवनागरी (द) संस्कृत।
उत्तर– (स) देवनागरी।

(28) देवभाषा मानी गयी है–
(अ) संस्कृत (ब) हिन्दी
(स) देववाणी (द) देवनागरी।
उत्तर– (अ) संस्कृत।

(29) रामचरितमानस के रचनाकार हैं–
(अ) वाल्मीकि (ब) वेद व्यास
(स) तुलसीदास (द) भगवान राम।
उत्तर– (स) तुलसीदास।

(30) भारत के दक्षिणी भू–भाग में मुगलों की शासन सत्ता स्थापित होने के बाद प्रचलित भाषा को कहा गया–
(अ) तमिल (ब) तेलगु
(स) ब्रज (द) दक्खिनी।
उत्तर– (द) दक्खिनी।

(31) खड़ी बोली को साहित्यिक भाषा का स्थान प्राप्त हुआ–
(अ) आदिकाल में (ब) मध्यकाल में
(स) आधुनिक काल में (द) कभी नहीं।
उत्तर– (स) आधुनिक काल में।

(32) भारत देश कब स्वतंत्र हुआ?
(अ) 15 अगस्त, सन् 1947 (ब) 26 जनवरी सन् 1947
(स) 15 अगस्त संवत् 1947 (द) 26 जनवरी संवत् 1947
उत्तर– (अ) 15 अगस्त, सन् 1947

(33) भाषा के लिये उपयोगी होते हैं–
(अ) सार्थक शब्द (ब) निरर्थक शब्द
(स) अनुपयुक्त शब्द (द) अमानक शब्द।
उत्तर– (अ) सार्थक शब्द।

(34) पाठशाला का उर्दू पर्याय है–
(अ) स्कूल (ब) विद्यालय
(स) मदरसा (द) शिक्षा।
उत्तर– (स) मदरसा ।

(35) आकार बहुला भाषायें हैं–
(अ) खड़ी बोली, हरियाणवी, दक्खिनी (ब) अवधी, बघेली, खड़ी बोली
(स) ब्रज, बुंदेली, खड़ी बोली (द) खड़ी बोली, संस्कृत, अंग्रेजी।
उत्तर– (अ) खड़ी बोली, हरियाणवी, दक्खिनी।

(36) भारत में सबसे पहले किस विश्वविद्यालय में हिन्दी को एम.ए. तक पाठ्यक्रम में स्थान मिला है?
(अ) कलकत्ता (ब) दिल्ली
(स) मुम्बई (द) केरल।
उत्तर– (अ) कलकत्ता।

(37) स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे–
(अ) पं. जवाहर लाल नेहरू (ब) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
(स) लाल बहादुर शास्त्री (द) मोहन दास करमचंद गाँधी।
उत्तर– (ब) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद।

(38) भारतवर्ष के राष्ट्रकवि हैं–
(अ) रामधारी सिंह दिनकर (ब) मैथिलीशरण गुप्त
(स) जयशंकर प्रसाद (द) मुंशी प्रेमचन्द
उत्तर– (ब) मैथिलीशरण गुप्त।

(39) तत्सम शब्द का उदाहरण है–
(अ) आश्चर्य (ब) ग्रंथि
(स) उपर्युक्त दोनों (द) उपर्युक्त कोई नहीं।
उत्तर– (ब) ग्रंथि।

(40) तद्भव शब्द का उदाहरण है–
(अ) गृह (ब) घर
(स) आवास (द) निवास।
उत्तर– (ब) घर।

(41) विस्मय किस रस का स्थायी भाव है?
(अ) करुण (ब) भयानक
(स) अद्भुत (द) शान्त।
उत्तर– (स) अद्भुत।

(42) हिन्दी साहित्य के आदिकाल का जैन साहित्य किस भाषा में लिखा गया था?
(अ) पालि (ब) अपभ्रंश
(स) अवधी (द) खड़ी बोली
उत्तर– (ब) अपभ्रंश

(43) सम्राट अकबर के नवरत्नों में कौन नहीं था?
(अ) बीरबल (ब) तानसेन
(स) रहीम (द) बैरम खाँ
उत्तर– (द) बैरम खाँ।

(44) 'रीतिकाल' के लिये कौन–सा नाम प्रचलित नहीं है?
(अ) अलंकृत काल (ब)कला काल
(स) पूर्व मध्यकाल (द) श्रृंगार काल
उत्तर– (स) पूर्व मध्यकाल।

(45) छायावाद के प्रमुख कवियों में निम्न में से किसकी कवि के रूप में गणना नहीं की जाती?
(अ) जयशंकर प्रसाद (ब) सुमित्रानन्दन पंत
(स) महादेवी वर्मा (द) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
उत्तर– (अ) जयशंकर प्रसाद

(46) भवानी प्रसाद मिश्र की प्रमुख कृति कौनसी है?
(अ) सागर मुद्रा (ब) अंधा युग
(स) गीत फरोश (द) संशय की एक रात
उत्तर– (स) गीत फरोश।

(47) कविता के क्षेत्र में कौन–सा शब्द पारिभाषिक नहीं है?
(अ) नई कविता (ब) अकविता
(स) समकालीन कविता (द) विद्रोही कविता
उत्तर– (द) विद्रोही कविता।

(48) गद्य रचना की लघुविधाओं में कौनसा नाम शामिल नहीं है?
(अ) जीवनी (ब) रेखाचित्र
(स) कहानी (द) पत्र साहित्य
उत्तर– (अ) जीवनी।

(49) संचारी भाव का सम्बन्ध निम्न में से किससे है?
(अ) गुण (ब) छंद
(स) अलंकार (द) रस
उत्तर– (द) रस।

(50) मालिनी छंद के प्रत्येक चरण में कितने वर्ण होते हैं?
(अ) 13 (ब) 14
(स) 15 (द) 16
उत्तर– (स) 15

(51) शब्दालंकार के प्रमुख भेद कितने हैं?
(अ) 3 (ब) 4
(स) 5 (द) 6
उत्तर– (स) 5

(52) 'हिन्दुस्तानी' किस भाषा का पर्याय है?
(अ) हिन्दवी का (ब) दक्खिनी हिन्दी का
(स) उर्दू भाषा का (द) हिन्दी भाषा का।
उत्तर– (द) हिन्दी भाषा का।

(53) वीरगाथा काल के कवियों में कौन–सा नाम नहीं है?
(अ) चन्द्रवरदाई (ब) नरपतिनाल्ह
(स) जगनिक (द) सूरदास।
उत्तर– (द) सूरदास।

(54) कबीर किस धारा के प्रवर्तक थे?
(अ) प्रेममार्गी धारा (द) ज्ञानमार्गी धारा

(स) भक्तिमार्गी धारा (द) सूफी मार्गी धारा।

उत्तर– (ब) ज्ञानमार्गी धारा

(55) 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह' को क्या कहा गया है?
(अ) रहस्यवाद (ब) छायावाद
(स) प्रगतिवाद (द) प्रयोगवाद।

उत्तर– (अ) रहस्यवाद।

(56) इनमें से कौन–सा लेखक नई कहानी का कहानीकार नहीं है?
(अ) कमलेश्वर (ब) मोहन राकेश
(स) राजेन्द्र यादव (द) जयशंकर प्रसाद।

उत्तर– (द) जयशंकर प्रसाद

(57) इनमें से कौनसी रचना भारतेन्दु हरिशचंद्र की नहीं है?
(अ) चन्द्रावली (ब) भारत दुर्दशा
(स) नीलदेव (द) गोदान।

उत्तर– (द) गोदान।

(58) 'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्' काव्य की परिभाषा किसकी है?
(अ) आचार्य वामन (ब) आचार्य विश्वनाथ
(स) आचार्य भामह (द) आचार्य नगेन्द्र।

उत्तर– (स) आचार्य नगेन्द्र

(59) 'वैराग्य' किस रस का स्थायी भाव है?
(अ) करुण (ब) वीर
(स) हास्य (द) शान्त।

उत्तर– (द) शान्त।

(60) 'रोला' के प्रत्येक चरण में कितनी मात्रायें होती हैं?
(अ) तेरह (ब) बारह
(स) बाईस (द) चौबीस।

उत्तर– (द) चौबीस।

(61) 'जहाँ शब्द में चमत्कार हो' वहाँ कौन–सा अलंकार होता है?
(अ) शब्दालंकार (ब) अर्थालंकार
(स) उपमा अलंकार (द) भ्रान्तिमान अलंकार।

उत्तर– (अ) शब्दालंकार।

(62) मध्यप्रदेश में बोली जाने वाली एक बोली है–
(अ) खड़ी बोली (ब) अवधी
(स) बघेली (द) कन्नौजी।

उत्तर– (स) बघेली।

(63) भारत की संपर्क भाषा है–
(अ) हिन्दी (ब) अंग्रेजी
(स) हिन्दी–अंग्रेजी (द) संस्कृत।

उत्तर– (अ) हिन्दी।

(64) 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता है–
(अ) विद्यापति (ब) अमीर खुसरो
(स) चन्दबरदाई (द) जगनिक।

उत्तर– (स) चन्दवरदाई।

(65) खड़ी बोली कविता का पल्लव काल किसे कहा जाता है?
(अ) भारतेन्दु काल (ब) द्विवेदी काल
(स) छायावाद (द) छायावादोत्तर काल।

उत्तर– (ब) द्विवेदी काल।

(66) मुक्त छंद के प्रणेता है–
(अ) सुमित्रा नंदन पंत (ब) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
(स) जयशंकर प्रसाद (द) महादेवी वर्मा।

उत्तर– (ब) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला।

(67) निम्नलिखित में से कौन–सा कवि भक्तिकालीन निर्गुण भक्त कवि नहीं है?
(अ) कबीर (ब) दादू
(स) नानक (द) जगनिक।

उत्तर– (द) जागनिक।

(68) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किस कवि को प्रेमाख्यान परम्परा का प्रथम कवि माना है?
(अ) कुतुवन (ब) मुल्ला दाऊद
(स) दामोदर (द) कल्लोल कवि।

उत्तर– (अ) कुतुवन।

(69) 'रामचन्द्रिका' के रचयिता है–
(अ) चिन्तामणि (ब) केशवदास
(स) मतिराम (द) पद्माकर।

उत्तर– (ब) केशवदास।

(70) हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास किसे माना जाता है?
(अ)चन्द्रकांता (ब) परीक्षा गुरू
(स) सेवासदन (द) गोदान।

उत्तर– (ब) परीक्षा गुरू।

(71) हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल का समय माना जाता है–
(अ) सं. 1375 से 1900 तक (ब) सं. 1050 से 1375 तक
(स) सं. 1900 से आज तक (द) सं. 1700 से 1900 तक।

उत्तर– (अ) सं. 1375 से 1900 तक।

(72) पूर्व मध्यकाल या भक्ति काल का समय माना जाता है–
(अ) सं. 1050 से 1375 तक (ब) सं. 1700 से 1900 तक
(स) सं. 1375 से 1900 तक (द) सं. 1375 से 1700 तक।

उत्तर– (द) सं. 1375 से 1700 तक।

(73) उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल माना जाता है–
(अ) सं. 1900 से आज तक (ब) सं. 1700 से 1900 तक
(स) सं. 1375 से 1900 तक (द) सं. 1050 से 1375 तक।

उत्तर– (ब) सं. 1700 से 1900 तक।

(74) भक्ति काल के प्रतिनिधि कवि हैं–
(अ) प्रसाद, पन्त, निराला (ब) बिहारी, देव, पद्माकर
(स) सूर, तुलसी, कबीर (द) केशव, घनानन्द, मतिराम।

उत्तर– (स) सूर, तलसी, कबीर।

(75) सन्त काव्य परम्परा के कवि हैं–
(अ) जायसी (ब) कबीर
(स) तुलसी (द) सूर।

उत्तर– (ब) कबीर।

(76) सूफी काव्य–परम्परा के प्रतिनिधि कवि हैं–
(अ) कबीर, रैदास, नानक (ब) जायसी, कुतबन, अमीर खुसरो
(स) बिहारी, घनानन्द, पद्माकर (द) सूर, तुलसी, रसखान।

उत्तर– (ब) जायसी, कुतबन, अमीर खुसरो।

(77) निर्गुण भक्तिधारा के कवि हैं–
(अ) तुलसीदास (ब) रसखान
(स) कबीरदास (द) सूरदास।

उत्तर– (स) कबीरदास।

(78) प्रेममार्गी शाखा के कवि हैं–
(अ) जायसी (ब) कबीर
(स) सूरदास (द) पद्माकर।

उत्तर– (अ) जायसी।

(79) ज्ञानमार्गी शाखा के कवि हैं–
(अ) अमीर खुसरो (ब) कबीरदास
(स) रसखान (द) बिहारीलाल।

उत्तर– (ब) कबीरदास।

(80) कृष्ण भक्तिधारा किसके अन्तर्गत आती है–
(अ) सगुण भक्तिधारा (ब) निर्गुण भक्तिधारा
(स) संत काव्य परम्परा (द) सूफी काव्य परम्परा।

उत्तर– (अ) सगुण भक्तिधारा।

(81) राम भक्ति शाखा के कवि हैं–
(अ) केशवदास (ब) जायसी
(स) कबीर (द) तुलसीदास।

उत्तर– (द) तुलसीदास।

(82) कृष्ण भक्ति शाखा के कवि हैं–
(अ) कबीरदास (ब) सूरदास
(स) बिहारीलाल (द) पद्माकर।

उत्तर– (ब) सूरदास।

(83) रीतिकाल के प्रमुख कवि हैं–
(अ) प्रसाद,पन्त, निराला (ब) बिहारी, घनानन्द, पद्माकर
(स) सूर, तुलसी, जायसी (द) कबीर, नानक, रैदास।

उत्तर– (ब) बिहारी, घनानन्द, पद्माकर।

(84) रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति रही है–
(अ) ईश्वर–भक्ति का प्रतिपादन
(ब) रीति निरूपण और श्रृंगारिक–चित्रण
(स) वीर–रस–वर्णन (द) समाज का यथार्थ–चित्रण।

उत्तर– (ब) रीति निरूपण और श्रृंगारिक–चित्रण।

(85) रीतिमुक्त काव्य–धारा के प्रमुख कवि हैं–
(अ) बिहारी (ब) पद्माकर
(स) घनानन्द (द) मतिराम।

उत्तर– (स) घनानन्द।

(86) ज्ञानमार्गी भक्तिधारा के प्रमुख प्रतिनिधि कवि हैं–
(अ) कबीर, रैदास, नानकदेव (ब) जायसी, कुतबन, मंझन
(स) तुलसीदास, अग्रदास, नाभादास (द) सूरदास, कृष्णदास, कुम्भनदास।

उत्तर– (अ) कबीर, रैदास, नानकदेव।

(87) विस्मय किस रस का स्थायी भाव है?
(अ) करुण (ब) भयानक
(स) अद्भुत (द) शान्त।

उत्तर– (स) अद्भुत।

(88) हिन्दी साहित्य के आदिकाल का जैन साहित्य किस भाषा में लिखा गया था?
(अ) पालि (ब) अपभ्रंश
(स) अवधी (द) खड़ी बोली

उत्तर– (ब) अपभ्रंश

(89) गद्य रचना की लघुविधाओं में कौनसा नाम शामिल नहीं है?
(अ) जीवनी (ब) रेखाचित्र
(स) कहानी (द) पत्र साहित्य

उत्तर– (अ) जीवनी।

(90) संचारी भाव का सम्बन्ध निम्न में से किससे है?
(अ) गुण (ब) छंद
(स) अलंकार (द) रस

उत्तर– (द) रस।

(91) मालिनी छंद के प्रत्येक चरण में कितने वर्ण होते हैं?
(अ) 13 (ब) 14
(स) 15 (द) 16

उत्तर– (स) 15

(92) शब्दालंकार के प्रमुख भेद कितने हैं?
(अ) 3 (ब) 4
(स) 5 (द) 6

उत्तर– (स) 5

(93) खड़ी बोली कविता का पल्लव काल किसे कहा जाता है?
(अ) भारतेन्दु काल (ब) द्विवेदी काल
(स) छायावाद (द) छायावादोत्तर काल।
उत्तर– (ब) द्विवेदी काल।

(94) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किस कवि को प्रेमाख्यान परम्परा का प्रथम कवि माना है?
(अ) कुतुबन (ब) मुल्ला दाऊद
(स) दामोदर (द) कल्लोल कवि।
उत्तर– (अ) कुतुबन।

(95) वीरगाथा काल के कवियों में कौन–सा नाम नहीं है?
(अ) चन्द्रवरदाई (ब) नरपतिनाल्ह
(स) जगनिक (द) सूरदास।
उत्तर– (द) सूरदास।

(96) कबीर किस धारा के प्रवर्तक थे?
(अ) प्रेममार्गी धारा (द) ज्ञानमार्गी धारा
(स) भक्तिमार्गी धारा (द) सूफी मार्गी धारा।
उत्तर– (ब) ज्ञानमार्गी धारा।

(97) 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह' को क्या कहा गया है?
(अ) रहस्यवाद (ब) छायावाद
(स) प्रगतिवाद (द) प्रयोगवाद।
उत्तर– (अ) रहस्यवाद।

(98) 'वैराग्य' किस रस का स्थायी भाव है?
(अ) करुण (ब) वीर
(स) हास्य (द) शान्त।
उत्तर– (द) शान्त।

(99) 'रोला' के प्रत्येक चरण में कितनी मात्रायें होती हैं?
(अ) तेरह (ब) बारह
(स) बाईस (द) चौबीस।
उत्तर– (द) चौबीस।

(100) 'जहाँ शब्द में चमत्कार हो' वहाँ कौन–सा अलंकार होता है?
(अ) शब्दालंकार (ब) अर्थालंकार
(स) उपमा अलंकार (द) भ्रान्तिमान अलंकार।
उत्तर– (अ) शब्दालंकार।

(101) निम्नलिखित में से कौन–सा कवि भक्तिकालीन निर्गुण भक्त कवि नहीं है?
(अ) कबीर (ब) दादू
(स) नानक (द) जगनिक।
उत्तर– (द) जगनिक।

❑❑❑